विधिवत धर्मविज्ञान का निर्माण करना

अध्याय 4

विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षाएँ

Manuscript

thirdmill
Biblical Education. For the World. For Free.

© थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ 2021के द्वारा

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी भाग को प्रकाशक, थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़, इनकोरपोरेशन, 316, लाइव ओक्स बुलेवार्ड, कैसलबरी, फ्लोरिडा 32707 की लिखित अनुमति के बिना समीक्षा, टिप्पणी, या अध्ययन के उद्देश्यों के लिए संक्षिप्त उद्धरणों के अतिरिक्त किसी भी रूप में या किसी भी तरह के लाभ के लिए पुनः प्रकशित नहीं किया जा सकता।

पवित्रशास्त्र के सभी उद्धरण बाइबल सोसाइटी ऑफ़ इंडिया की हिन्दी की पवित्र बाइबल से लिए गए हैं। सर्वाधिकार © The Bible Society of India

थर्ड मिलेनियम के विषय में

1997 में स्थापित, थर्ड मिलेनियम एक लाभनिरपेक्ष सुसमाचारिक मसीही सेवकाई है जो पूरे संसार के लिए मुफ्त में बाइबल आधारित शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है।

संसार के लिए मुफ़्त में बाइबल आधारित शिक्षा।

हमारा लक्ष्य संसार भर के हज़ारों पासवानों और मसीही अगुवों को मुफ़्त में मसीही शिक्षा प्रदान करना है जिन्हें सेवकाई के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ है। हम इस लक्ष्य को अंग्रेजी, अरबी, मनडारिन, रूसी, और स्पैनिश भाषाओं में अद्वितीय मल्टीमीडिया सेमिनारी पाठ्यक्रम की रचना करने और उन्हें विश्व भर में वितरित करने के द्वारा पूरा कर रहे हैं। हमारे पाठयक्रम का अनुवाद सहभागी सेवकाइयों के द्वारा दर्जन भर से अधिक अन्य भाषाओं में भी किया जा रहा है। पाठ्यक्रम में ग्राफिक वीडियोस, लिखित निर्देश, और इंटरनेट संसाधन पाए जाते हैं। इसकी रचना ऐसे की गई है कि इसका प्रयोग ऑनलाइन और सामुदायिक अध्ययन दोनों संदर्भों में स्कूलों, समूहों, और व्यक्तिगत रूपों में किया जा सकता है।

वर्षों के प्रयासों से हमने अच्छी विषय-वस्तु और गुणवत्ता से परिपूर्ण पुरस्कार-प्राप्त मल्टीमीडिया अध्ययनों की रचना करने की बहुत ही किफ़ायती विधि को विकसित किया है। हमारे लेखक और संपादक धर्मवैज्ञानिक रूप से प्रशिक्षित शिक्षक हैं, हमारे अनुवादक धर्मवैज्ञानिक रूप से दक्ष हैं और लक्ष्य-भाषाओं के मातृभाषी हैं, और हमारे अध्यायों में संसार भर के सैकड़ों सम्मानित सेमिनारी प्रोफ़ेसरों और पासवानों के गहन विचार शामिल हैं। इसके अतिरिक्त हमारे ग्राफिक डिजाइनर, चित्रकार, और प्रोडयूसर्स अत्याधुनिक उपकरणों और तकनीकों का प्रयोग करने के द्वारा उत्पादन के उच्चतम स्तरों का पालन करते हैं।

अपने वितरण के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए थर्ड मिलेनियम ने कलीसियाओं, सेमिनारियों, बाइबल स्कूलों, मिशनरियों, मसीही प्रसारकों, सेटलाइट टेलीविजन प्रदाताओं, और अन्य संगठनों के साथ रणनीतिक सहभागिताएँ स्थापित की हैं। इन संबंधों के फलस्वरूप स्थानीय अगुवों, पासवानों, और सेमिनारी विद्यार्थियों तक अनेक विडियो अध्ययनों को पहुँचाया जा चुका है। हमारी वेबसाइट्स भी वितरण के माध्यम के रूप में कार्य करती हैं और हमारे अध्यायों के लिए अतिरिक्त सामग्रियों को भी प्रदान करती हैं, जिसमें ऐसे निर्देश भी शामिल हैं कि अपने शिक्षण समुदाय को कैसे आरंभ किया जाए।

थर्ड मिलेनियम a 501(c)(3) कारपोरेशन के रूप में IRS के द्वारा मान्यता प्राप्त है। हम आर्थिक रूप से कलीसियाओं, संस्थानों, व्यापारों और लोगों के उदार, टैक्स-डीडक्टीबल योगदानों पर आधारित हैं। हमारी सेवकाई के बारे में अधिक जानकारी के लिए, और यह जानने के लिए कि आप किस प्रकार इसमें सहभागी हो सकते हैं, कृपया हमारी वैबसाइट http://thirdmill.org को देखें।

विषय-वस्तु

परिचय....................1
दिशा-निर्धारण....................1
परिभाषा....................1
विषय....................2
संकलन....................2
स्पष्टीकरण....................3
वैधता....................5
यीशु....................5
पौलुस....................6
लक्ष्य....................8
सकारात्मक....................8
नकारात्मक....................8
स्थान....................10
रचना....................11
बाइबल आधारित समर्थन....................11
प्रक्रिया....................11
उदाहरण....................12
तार्किक समर्थन....................14
अधिकार....................14
निगमनात्मक अर्थ....................17
विवेचनात्मक निश्चितता....................19
मूल्य और खतरे....................23
मसीही जीवन....................24
वृद्धि....................24
रूकावट....................25
समुदाय में सहभागिता....................26
वृद्धि....................26
रूकावट....................27
पवित्रशास्त्र की व्याख्या....................28
वृद्धि....................28
रूकावट....................29
उपसंहार....................30

विधिवत धर्मविज्ञान का निर्माण करना

अध्याय चार

विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षाएँ

परिचय

शायद आप मेरी तरह हों। मैं एक ऐसी कलीसिया में पला-बढ़ा जहाँ शब्द "धर्मशिक्षा" को एक बहुत ही सकारात्मक शब्द नहीं माना जाता था। बाइबल पर विश्वास करने की अपेक्षा धर्मशिक्षाएँ वे बातें थीं जिन पर लोगों ने विश्वास कर लिया था। अतः जब मैंने पहली बार यह सीखना आरंभ किया कि विधिवत धर्मविज्ञान इस धर्मशिक्षा और उस धर्मशिक्षा पर ध्यान केंद्रित करती है, तो मैं पीछे हट गया। मसीह के अनुयायी को बाइबल की अपेक्षा धर्मशिक्षाओं को सीखने की आवश्यकता क्यों है? परंतु पारंपरिक विधिवत धर्मविज्ञान में धर्मशिक्षाएँ बाइबल का स्थान पर नहीं लेतीं। इसकी अपेक्षा वे केवल उसका सारांश बताने के तरीके हैं जो हम सच्चाई से मानते हैं कि बाइबल सिखाती है। और इसी प्रकार, ठोस धर्मशिक्षाओं का मसीही धर्मविज्ञान में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

यह विधिवत धर्मविज्ञान का निर्माण करना की हमारी श्रृंखला का चौथा अध्याय है और हमने इस अध्याय का शीर्षक "विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षाएँ" दिया है क्योंकि इसमें हम उन तरीकों को देखेंगे जिनमें विधिवत धर्मविज्ञान की रचना में कई भिन्न विषयों पर शिक्षाओं या धर्मशिक्षाओं का निर्माण सम्मिलित होता है।

हमारा अध्याय तीन मुख्य भागों में विभाजित होगा। हम विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षाओं के प्रति एक सामान्य दिशा निर्धारण के साथ आरंभ करेंगे। वे क्या हैं? विधिवत धर्मविज्ञान में उनका क्या स्थान है? दूसरा, हम धर्मशिक्षाओं की रचना की खोज करेंगे। धर्मविज्ञानी अपने धर्मशिक्षा-संबंधी विचारों की रचना कैसे करते हैं? और तीसरा, हम विधिवत धर्मविज्ञान में धर्मशिक्षाओं के मूल्यों और खतरों का अध्ययन करेंगे। वे हमारे समक्ष कौन से लाभों और हानियों को प्रस्तुत करती हैं? आइए हमारे इस विषय के प्रति एक सामान्य दिशा-निर्धारण के साथ आरंभ करें।

दिशा-निर्धारण

विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षा के प्रति हमारे दिशा-निर्धारण में हम चार विषयों को स्पर्श करेंगे। पहला, हम जो कह रहे हैं उसके लिए एक परिभाषा प्रदान करेंगे। दूसरा, हम धर्मशिक्षाओं की रचना करने की वैधता पर ध्यान केंद्रित करेंगे। तीसरा, हम विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षाओं के लक्ष्यों की ओर मुड़ेंगे। और चौथा, हम विधिवत धर्मविज्ञान में धर्मशिक्षाओं के स्थान का वर्णन करेंगे। आइए सबसे पहले यह देखें कि विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षाओं से हमारा क्या अर्थ है।

परिभाषा

हम एक सरल सी परिभाषा के साथ आरंभ करेंगे। शब्द "धर्मशिक्षा" का प्रयोग धर्मविज्ञान में इतने तरीकों में हुआ है कि एक ऐसी परिभाषा दे पाना मुश्किल है जो हर एक को संतुष्ट करे। परंतु हमारे उद्देश्यों के लिए. विधिवत प्रक्रियाओं में एक धर्मशिक्षा को कुछ ऐसे परिभाषित किया जा सकता है :

> धर्मशिक्षा एक धर्मवैज्ञानिक विषय पर बाइबल आधारित शिक्षा का संकलन और विवरण है।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

यह परिभाषा उसके तीन मुख्य आयामों को दर्शाती है जिसके बारे में हम इस अध्याय में धर्मशिक्षा के विषय में बात करते हुए कहेंगे। पहला, धर्मशिक्षाओं का संबंध धर्मवैज्ञानिक विषयों से है; दूसरा, वे बाइबल आधारित शिक्षाओं को संकलित करती हैं; और तीसरा वे बाइबल आधारित शिक्षाओं को स्पष्ट करती हैं।

आइए हमारी परिभाषा के प्रत्येक आयाम को खोल दें, उन तरीकों के साथ आरंभ करें जिनमें यह धर्मशिक्षा-संबंधी कथन धर्मवैज्ञानिक विषयों पर केंद्रित होते हैं, इसके पश्चात् इस तथ्य की ओर मुड़ें कि वे बाइबल आधारित शिक्षाओं को संकलित करते हैं, और फिर इस तथ्य की ओर कि वे पवित्रशास्त्र की शिक्षाओं की व्याख्या करते हैं।

विषय

हमें अब तक यह समझ लेना चाहिए कि धर्मविज्ञान असँख्य विषयों के साथ अध्ययन का एक विस्तृत क्षेत्र है। यह इतना व्यापक है कि इसकी तुलना रात्रिकाल के आकाश के व्यापक फैलाव के साथ की जा सकती है। धर्मविज्ञान का व्यापक आकार और जटिलता अक्सर हमें इसके साथ अस्त-व्यस्त और बिखरे हुए तरीके से लालायित करता है। फिर भी, जैसे खगोलविज्ञानी रात्रिकालीन आकाश को अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित करना सहायक पाते हैं, वैसे ही विधिवत धर्मविज्ञानियों ने भी धर्मविज्ञान को भिन्न विषयों में विभाजित करना सहायक पाया है।

हमने इसी श्रृंखला में देखा है कि मध्यकाल से ही विधिवत धर्मविज्ञान को पाँच या छः मुख्य क्षेत्रों में विभाजन करने की मजबूत प्रवृत्ति रही है : बाइबल-विज्ञान, जो बाइबल पर ध्यान केंद्रित करता है; परमेश्वर-विज्ञान जो स्वयं परमेश्वर पर ध्यान देता है; मानव-विज्ञान, धर्मवैज्ञानिक दृष्टिकोणों के साथ मनुष्यजाति से संबंधित; उद्धार-विज्ञान, उद्धार का विषय; कलीसिया-विज्ञान, कलीसिया पर ध्यान; और युगांत-विज्ञान, अंत की बातों का विषय। इस अध्याय में, शब्द "धर्मशिक्षा" इन अत्यधिक विस्तृत विषयों से संबंधित कथन या स्पष्टीकरण को सम्मिलित करता है।

परंतु जैसा कि हम जानते हैं, धर्मशिक्षा की ये और अन्य विस्तृत श्रेणियाँ और भी छोटे-छोटे विषयों में विभाजित होती हैं। उदाहरण के लिए परमेश्वर-विज्ञान को लें। परमेश्वर-विज्ञान का एक पहलू मसीह-विज्ञान की धर्मशिक्षा है। यह मसीह के व्यक्तित्व और कार्य दोनों को समाहित करता है। और मसीह का व्यक्तित्व उसके मानवीय और ईश्वरीय दोनों स्वभावों में विभाजित होता है। और उसके मानवीय स्वभाव में उसका शरीर और उसका प्राण दोनों पाए जाते हैं, और ऐसे कई विभाजन हैं।

विधिवत धर्मविज्ञान में प्रत्येक मुख्य धर्मशिक्षा छोटे-छोटे विषयों में विभाजित होती है। अब इस अध्याय के अधिकतर भागों में हम शब्द "धर्मशिक्षा" का प्रयोग विधिवत धर्मविज्ञान के ऐसे विषयों के विचार-विमर्श को दर्शाने के लिए करेंगे जो आकार में अच्छे बड़े हों। परंतु हमें यह जानते हुए लचीले बने रहना चाहिए कि धर्मविज्ञान का कोई भी स्तर, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, कुछ सीमा तक धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श को अवश्य सम्मिलित करता है।

धर्मवैज्ञानिक विषयों पर ध्यान केंद्रित करने के अतिरिक्त, विधिवत धर्मविज्ञान में धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श बाइबल आधारित शिक्षाओं को एक दूसरे के साथ संबंधित करते हुए उन्हें संकलित करता है।

संकलन

पूर्व के हमारे एक अध्याय में हमने विधिवत प्रक्रियाओं की तुलना एक वृक्ष से की थी। एक वृक्ष भूमि में से बाहर निकलता हुआ बढ़ता है, परंतु यह उस मिट्टी से बिल्कुल भिन्न दिखाई देता है जिसमें से निकल कर बढ़ता है। ऐसे ही, विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श पवित्रशास्त्र से निकल कर बढ़ते हैं, और पवित्रशास्त्र से बिल्कुल भिन्न दिखाई देते हैं।

धर्मशिक्षाओं का बाइबल से भिन्न दिखाई देने का एक मुख्य कारण यह है कि ये संकलित होती हैं। एक समय में एक ही अनुच्छेद पर ध्यान केंद्रित करने की अपेक्षा, धर्मशिक्षा सामान्यतः पवित्रशास्त्र में से कई स्थानों की शिक्षाओं को व्यक्त करती हैं।

आइए हम एक सरल सा उदाहरण देखें। उस धर्मशिक्षा-संबंधी रचना पर ध्यान दें जिसे प्रेरितों का विश्वासवचन के नाम से जाना जाता है। यह ऐसी कुछ बहुत ही मूल धर्मशिक्षाओं या शिक्षाओं का सार प्रदान करता है जिसकी हम मसीह के अनुयायी होने के नाते पुष्टि करते हैं। यह कहना उचित होगा कि यह “आधारभूत मसीही मान्यताओं” के विषय पर ध्यान केंद्रित करता है। आप जानते हैं कि यह कैसा है :

> मैं विश्वास रखता हूँ सर्वसामर्थी पिता परमेश्वर पर,
> जिसने आकाश व पृथ्वी की रचना की।
> और उसके इकलौते पुत्र हमारे प्रभु यीशु मसीह पर,
> कि वह पवित्र आत्मा की सामर्थ से देहधारी होकर कुंवारी मरियम से उत्पन्न हुआ,
> पेन्तुस पिलातुस के राज्य में दुःख उठाया, क्रूस पर चढ़ाया गया,
> मारा गया, गाढ़ा गया, अधोलोक में गया,
> तीसरे दिन मृतकों में से जी उठा,
> आकाश पर चढ़ गया
> और सर्वसामर्थी पिता परमेश्वर के दाहिने हाथ बैठा है।
> जहाँ से वह जीवितों व मृतकों का न्याय करन के लिए आएगा,
> मैं विश्वास रखता हूँ पवित्र आत्मा पर,
> विश्वासियों की मण्डली पर,
> संतों की संगति पर,
> पापों की क्षमा,
> देह के जी उठने और अनंत जीवन पर – आमीन।

ध्यान दें कि कैसे मसीही मान्यताओं की यह ऐतिहासिक अभिव्यक्ति बाइबल से तुलना करती है। एक शब्द में कहें तो, विश्वासवचन बाइबल से बहुत ही भिन्न दिखाई देता है। कहीं भी बाइबल में ये शब्द नहीं पाए जाते। यह इन विचारों के साथ मसीही मान्यताओं का सार भी प्रदान नहीं करती है, या ना ही एक स्थान पर इन सभी भिन्न विषयों को संकलित करती है।

फिर भी, प्रेरितों का विश्वासवचन बाइबल पर आधारित है क्योंकि यह बाइबल के कई विभिन्न हिस्सों को सटीक रूप से प्रतिबिंबित करता है। विश्वासवचन की अंतिम पंक्तियों के बारे में सोचें :

> मैं विश्वास रखता हूँ . . .
> पापों की क्षमा,
> देह के जी उठने,
> और अनंत जीवन पर।

बाइबल के किसी एक पद या पदों के किसी समूह में ये सभी शिक्षाएँ नहीं पाई जातीं। फिर भी, यह सभी शिक्षाएँ बाइबल में विभिन्न स्थानों पर पाई जा सकती हैं। प्रेरितों का विश्वासवचन उन मान्यताओं को एक धर्मसशिक्षा-संबंधी सार में संकलित करता है जिनमें हम मसीही होने के नाते विश्वास करते हैं।

स्पष्टीकरण

हमारी परिभाषा का तीसरा पहलू यह है कि धर्मशिक्षाएँ उसे स्पष्ट करती हैं जो बाइबल एक विषय के बारे में सिखाती है। ये स्पष्टीकरण जानकारी को धर्मवैज्ञानिक तर्क-वाक्यों के रूप में एकत्रित करने जैसे

कार्य जितने सरल हो सकते हैं, या एक जटिल धर्मवैज्ञानिक शिक्षा के व्यापक बचाव के रूप में सम्मिलित हो सकते हैं।

यह धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श की व्याख्यात्मक विशेषता को एक कड़ी के रूप में हुए सोचने में सहायता करता है। एक सिरे पर, हमारे पास बहुत ही थोड़े विवरण के साथ बाइबल आधारित शिक्षा के सरल कथन हैं। बीच के स्थान पर, हम उन विचार-विमर्शों को पाते हैं जिनमें थोडा बहुत स्पष्टीकरण पाया जाता है। और कड़ी के दूसरे सिरे पर, कुछ धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श अत्यधिक स्पष्टीकरण प्रदान करते हैं। आइए एक ऐसे धर्मशिक्षा-संबंधी कथन पर ध्यान दें जो एक विषय के बारे में बहुत कम बात करता है।

प्रेरितों का विश्वासवचन ऐसे ही एक सिरे को प्रस्तुत करता है जब यह लगभग किसी तरह के कोई स्पष्टीकरण प्रदान नहीं करता। उदाहरण के लिए, केवल एक ही बात जो यह परमेश्वर पिता के बारे में कहता है वह यह है कि वह सर्वशक्तिमान है, और कि वह स्वर्ग और पृथ्वी का सृष्टिकर्ता है। यह योग्यताएँ उस विषय में थोड़ा सा स्पष्ट करती हैं कि पिता पर विश्वास करने का क्या अर्थ है, परंतु वे ज्यादा कुछ नहीं कहतीं। विश्वासवचन पुत्र के बारे में थोड़ा अधिक कहता है। परंतु पवित्र आत्मा के विषय में, प्रेरितों का विश्वासवचन मात्र यही कहता है, "मैं विश्वास करता हूँ पवित्र आत्मा पर" और यह कि "मसीह पवित्र आत्मा की सामर्थ से उत्पन्न हुआ," परंतु इससे ज्यादा कुछ नहीं। अक्सर धर्मशिक्षाओं को इन सरल तरीकों से कहा जाता है। इस तरह के सरल कथनों के कलीसिया के जीवन में कई सकारात्मक प्रयोग हैं, परंतु केवल वे ही एकमात्र तरीका नहीं हैं जिनमें धर्मशिक्षाएँ प्रकट होती हैं।

कड़ी के केंद्र की ओर धर्मशिक्षाओं के ऐसे विचार-विमर्श पाए जाते हैं जिनमें थोड़े बहुत स्पष्टीकरण पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए, अधिकतर प्रोटेस्टेंट प्रश्नोत्तरियाँ और अंगीकरण धर्मवैज्ञानिक विषयों के साथ इस प्रकार व्यवहार करते हैं।

हम पहले ही देख चुके हैं कि कैसे प्रेरितों का विश्वासवचन मात्र कुछ ही पँक्तियों में त्रिएकता की धर्मशिक्षा को दर्शाता है। परंतु तुलना के तरीके पर ध्यान दें कि किस प्रकार हैडलबर्ग प्रश्नोत्तरी (1563 में लिखी गई) त्रिएकता के इसके स्पष्टीकरण में और अधिक व्यापक है। आइए ऐसे शुरू करें, प्रश्न और उत्तर 23 में, हैडलबर्ग प्रश्नोत्तरी वास्तव में संपूर्ण प्रेरितों के विश्वासवचन को उद्धृत करती है। परंतु विश्वासवचन के इस उद्धरण के पश्चात् 31 अतिरिक्त प्रश्न और उत्तर आते हैं जो त्रिएकता पर आधारित है। उदाहरण के लिए प्रश्न 26 को देखें। यह पूछता है :

> आप क्या विश्वास करते हैं जब आप यह कहते हैं, "मैं विश्वास रखता हूँ सर्वसामर्थी पिता परमेश्वर पर, जिसने आकाश और पृथ्वी की रचना की।"?

और निसंदेह यह प्रेरितों के विश्वासवचन की आरंभिक पँक्ति का उल्लेख है। और यहाँ इसका स्पष्टीकरण है जो उत्तर संख्या 26 में आता है :

> हमारे प्रभु यीशु मसीह का अनंत पिता, जिसने स्वर्ग और पृथ्वी और जो कुछ इसमें पाया जाता है को शून्य से उत्पन्न किया, जो अब भी अपने अनंत परामर्श और विधान के द्वारा उन्हें चलाता है और उन पर राज्य करता है, वह अपने पुत्र मसीह के द्वारा मेरा परमेश्वर और पिता है। मुझे उस पर इतना भरोसा है कि मैं इस पर बिल्कुल संदेह नहीं करता कि मेरे शरीर और प्राण के लिए जो कुछ जरूरी है उसकी पूर्ती वह करेगा, और इस निराश संसार में वह चाहे मुझे किसी भी तरह के कष्ट से होकर क्यों न जाने दे वह मेरा भला ही करेगा। वह ऐसा करने के योग्य है क्योंकि वह सर्वशक्तिमान परमेश्वर है; वह ऐसा करना चाहता है क्योंकि वह विश्वासयोग्य पिता है।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

यह स्पष्टीकरण कि पिता में विश्वास किये जाने का क्या अर्थ है प्रेरितों के विश्वासवचन में पाए जाने वाले एक वाक्य से अधिक विस्तृत है।

अब कड़ी के दूसरे सिरे पर ऐसे धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श हैं जिनमें व्यापक स्पष्टीकरण पाए जाते हैं। अक्सर ये अधिक विस्तृत स्पष्टीकरण इस या उस दृष्टिकोण का तर्क देते हुए धर्मवैज्ञानिक दृष्टिकोणों के व्यापक प्रमाणों को भी प्रस्तुत करते हैं।

अधिकतर विधिवत धर्मविज्ञान में औपचारिक लेखन इसी श्रेणी में आते हैं। विस्तृत विधिवत धर्मविज्ञानों में अक्सर उन सब बातों का समावेश होता है जो विश्वासवचनों, प्रश्नोत्तरियों और अंगीकार के कथनों में पाया जाता है, और फिर बड़ी मात्रा में यह स्पष्टीकरण सामग्री को जोड़ता है।

उदाहरण के लिए, जहाँ प्रेरितों के विश्वासवचन में त्रिएकता की धर्मशिक्षा के लिए केवल कुछ ही पंक्तियाँ हैं, और हैडलबर्ग धर्मशिक्षा प्रश्नोत्तरी में 31 प्रश्न और उसके उत्तर हैं, वहीं चार्ल्स होड्ज़ अपनी सिस्टेमेटिक थियोलोजी नामक पुस्तक में इस धर्मशिक्षा के प्रति चार अध्याय समर्पित करता है, और ये अध्याय 200 से अधिक पृष्ठों में पाए जाते हैं। धर्मशिक्षाओं का व्यापक स्पष्टीकरण औपचारिक विधिवत धर्मविज्ञानियों की विशेषता है।

इसलिए, जब हम विधिवत धर्मविज्ञान में धर्मशिक्षाओं के विषय को देखते हैं, तो हमें यह अनुभव करने की आवश्यकता है कि हम विभिन्न तरह के स्पष्टीकरणों के साथ व्यवहार कर रहे हैं, धर्मशिक्षाएँ धर्मविज्ञान के विषयों की बाइबल आधारित शिक्षाओं की व्याख्या विभिन्न स्तरों पर करती हैं।

अब जबकि हमने यह देख लिया है कि विधिवत धर्मविज्ञान में जब हम धर्मशिक्षाओं की बात करते हैं तो हमारा क्या अर्थ होता है, इसलिए हमें इस विषय पर अपने दिशा निर्धारण के दूसरे पहलू की ओर मुड़ना चाहिए। हम धर्मशिक्षाओं की रचना को कैसे न्यायसंगत ठहरा सकते हैं? धर्मविज्ञानी यह क्यों सोचते हैं कि इन तरीकों में बाइबल की शिक्षाओं की व्याख्या करना और उन्हें संकलित करना वैध है?

वैधता

ये महत्वपूर्ण प्रश्न हैं क्योंकि बहुत सी मसीही कलीसियाएँ धर्मशिक्षाओं की पुष्टि करने का विरोध करती हैं। शायद आपने इस नारे को सुना होगा, "कोई विश्वासवचन नहीं, केवल मसीह।" "हमें कोई धर्मशिक्षा नहीं चाहिए, केवल बाइबल चाहिए।" अब, हम इन भावनाओं के पीछे छिपे हुए उद्देश्यों की सराहना कर सकते हैं क्योंकि वे सामान्यतः पवित्रशास्त्र के प्रति एक उच्च दृष्टिकोण को दर्शाते हैं। इसलिए, विधिवत धर्मविज्ञानी बाइबल की शिक्षाओं को जैसी वे हैं वैसी ही क्यों नहीं छोड़ देते? वे पवित्रशास्त्र की शिक्षाओं को विषयों में क्यों विभाजित कर देते हैं, और बाइबल इन विषयों के बारे में जो शिक्षा देती है उसको संकलित और स्पष्ट क्यों करते हैं?

धर्मशिक्षाओं के निर्माण के पक्ष में एक प्रभावशाली विषय यह है कि बाइबल के पात्र इस क्रिया के लिए हमारे आदर्श हैं। हम धर्मशिक्षाओं पर विचार-विमर्श करने वाले बाइबल के केवल दो पात्रों के उदाहरणों को ही देखेंगे। पहला, हम यीशु के उदाहरण को देखेंगे और दूसरा, प्रेरित पौलुस के उदाहरण को। आइए सबसे पहले हम उस समय को देखें जब यीशु ने बाइबल की शिक्षाओं के विषय-आधारित संकलन और व्याख्या को प्रदान किया।

यीशु

उदाहरण के लिए, उस समय पर ध्यान दें जब यीशु को सबसे बड़ी आज्ञा के बारे में पूछा गया था। मत्ती 22:35-40 के इन शब्दों को सुनें :

> उनमें से एक व्यवस्थापक [फरीसी], ने उसे [यीशु को] परखने के लिये उससे पूछा : हे गुरू; व्यवस्था में कौन सी आज्ञा बड़ी है?" उसने उस से कहा, "'तू

> परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन और अपने सारे प्राण और अपनी सारी बुद्धि के साथ प्रेम रख।' बड़ी और मुख्य आज्ञा तो यही है। और उसी के समान यह दूसरी भी है : 'कि तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख। ये ही दो आज्ञाएँ सारी व्यवस्था और भविष्यद्वक्ताओं का आधार है'" **(मत्ती 22:35-40)**।

जैसा कि हम देखेंगे, जो कुछ यीशु ने यहाँ किया उसमें धर्मवैज्ञानिक धर्मशिक्षा की हमारी परिभाषा के सारे तत्व विद्यमान हैं।

पहला, यह अनुच्छेद एक धर्मवैज्ञानिक विषय पर ध्यान केंद्रित करता है। एक फरीसी यीशु के पास एक प्रश्न के साथ आया। "हे गुरू; व्यवस्था में कौन सी आज्ञा बड़ी है?" यह प्रश्न उन तरीकों से अलग था जिनमें यीशु के दिनों में धर्मविज्ञानी अपने धर्मवैज्ञानिक विषयों के बारे में सोचा करते थे। यहाँ पुराने नियम की कोई भी पुस्तक, अध्याय, अनुच्छेद या यहाँ तक कि ऐसा कोई भी पद नहीं है जो इस प्रश्न को प्रत्यक्ष रूप में संबोधित करता हो। इसलिए, वास्तव में उस फरीसी ने एक धर्मवैज्ञानिक विषय को उठाया जो उन विषयों से बहुत मिलता जुलता था जिन्हें हम विधिवत धर्मविज्ञान में पाते हैं।

दूसरा, यीशु ने बाइबल आधारित दो अनुच्छेदों को संकलित करते हुए प्रत्युत्तर दिया। उसने केवल बाइबल के एक अनुच्छेद को उद्धृत करके यों ही छोड़ नहीं दिया। इसकी अपेक्षा, उसने पुराने नियम के दो पदों को आपस में लाकर जोड़ा : व्यवस्थाविवरण 6:5 और लैव्यव्यवस्था 19:18। एक ओर तो उसने व्यवस्थाविवरण 6:5 को उद्धृत किया जब उसने यह कहा, "तू परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन और अपने सारे प्राण और अपनी सारी बुद्धि के साथ प्रेम रख।" और उसने लैव्यव्यवस्था 19:18 को उद्धृत किया जब उसने यह कहा :"तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख।" विधिवत धर्मविज्ञानियों की तरह यीशु ने बड़ी आज्ञा के विषय में बाइबल के कई अनुच्छेदों को धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श में संकलित किया।

तीसरा, यीशु ने इस विषय पर अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया। उसने इन आज्ञाओं की प्राथमिकताओं को स्पष्ट किया जब उसने यह कहा, "बड़ी और मुख्य आज्ञा तो यही है। और उसी के समान यह दूसरी भी है।" और अंत में, यीशु ने इस अंतिम धर्मवैज्ञानिक टिप्पणी के साथ आज्ञाओं के महत्व को स्पष्ट किया, "ये ही दो आज्ञाएँ सारी व्यवस्था और भविष्यद्वक्ताओं का आधार हैं।"

यीशु का उदाहरण विधिवत धर्मविज्ञान में धर्मशिक्षाओं की रचना की वैधता की पुष्टि करता है। यदि यीशु ने धर्मशिक्षाओं के बारे में नकारात्मक रूप से महसूस किया होता, तो उसने फरीसी से यह पूछा होता, "तुम धर्मशिक्षाओं की रचना करने का प्रयास क्यों कर रहे हो? तुम्हें तो केवल उसी से संतुष्ट रहना चाहिए जो पवित्रशास्त्र कहता है।" परंतु इसकी अपेक्षा यीशु एक धर्मवैज्ञानिक विचार विमर्श में लीन हो गया।

यीशु द्वारा धर्मशिक्षाओं के विचार-विमर्श में शामिल होने की कई घटनाओं में से एक को देखने के बाद, हमें यह भी देखना चाहिए कि प्रेरित पौलुस ने भी ऐसा ही किया था।

पौलुस

पौलुस ने पूरे भूमध्यसागरीय संसार में मसीहियों को बहुत से पत्र लिखे, और उसने प्राथमिक रूप से व्यवहारिक, पास्तरीय विषयों को संबोधित किया। परंतु उसने धर्मवैज्ञानिक धर्मशिक्षाओं पर ध्यान देने के द्वारा निरंतर इन पास्तरीय विषयों के साथ व्यवहार किया।

आइए उस एक तरीके को देखें जिसमें पौलुस ने रोमियों की पुस्तक के एक भाग में ऐसा किया था। जब उसने रोम की कलीसिया में यहूदियों और गैरयहूदियों के बीच संघर्ष के पास्तरीय विषय के साथ व्यवहार किया, तब पौलुस ने एक अपेक्षाकृत व्यापक धर्मशिक्षा-संबंधी प्रस्तुतीकरण की रचना की। एक जाना-पहचाना उदाहरण रोमियों 4:1-25 में प्रकट होता है। अब इस अनुच्छेद के बारे में असँख्य बातें कही

जा सकती हैं, परंतु हम केवल यही दर्शाएंगे कि यह अनुच्छेद किस प्रकार धर्मविज्ञान आधारित धर्मशिक्षाओं की हमारी परिभाषा के तीन तत्वों को दर्शाता है। यह एक विषय पर ध्यान केंद्रित करता है, यह बाइबल के कई अनुच्छेदों को संकलित करता है और उन्हें स्पष्ट करता है। पहला, पौलुस ने एक विषय पर ध्यान केंद्रित किया : पुराने नियम में विश्वास के द्वारा धर्मी ठहराया जाना।

रोमियों 4 का परिचय पिछले अध्याय के अंत में एक प्रश्न के द्वारा कराया गया है। रोमियों 3:31 से इस प्रश्न को सुनिए :

> तो क्या हम व्यवस्था को विश्वास के द्वारा व्यर्थ ठहराते हैं (रोमियों 3:31)।

इस प्रश्न ने पौलुस के लिए मंच तैयार कर दिया कि वह रोमियों 4 के विषय पर अपने दृष्टिकोणों को व्यक्त करे, और वह विषय है, पुराने नियम में विश्वास के द्वारा धर्मी ठहराया जाना। पुराने नियम में कोई भी पुस्तक, अध्याय, अनुच्छेद या यहाँ तक कि ऐसा कोई भी पद नहीं है जो इस प्रश्न को प्रत्यक्ष रूप में स्पष्ट करता हो। इसकी अपेक्षा यह ऐसा धर्मवैज्ञानिक विषय था जिसमें पौलुस की रूचि थी।

एक धर्मविज्ञान आधारित विषय होने के अतिरिक्त, रोमियों 4:1-25 धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श की हमारी परिभाषा में उपयुक्त बैठता है क्योंकि पौलुस ने इस विषय को बाइबल के कई अनुच्छेदों की शिक्षाओं को संकलित करते हुए संबोधित किया है। इस अध्याय को सरसरी तौर से देखने से यह प्रकट होता है कि उसने पुराने नियम का उल्लेख कम से कम सात बार किया है।

पद 3 में पौलुस ने उत्पत्ति 15:6 को उद्धृत किया। पद 6 में पौलुस ने भजन 32:1-2 का प्रयोग किया। पद 10 में उसने उत्पत्ति 15 और 17 की तुलना की। पद 16 और 17 में पौलुस ने उत्पत्ति 17:5 को उद्धृत किया। पद 18 में उसने उत्पत्ति 15:5 को उद्धृत किया। पद 19 में प्रेरित ने उत्पत्ति 17:17 और 18:11 का प्रयोग किया। और अंत में, पद 23-24 में पौलुस ने उत्पत्ति 15:6 को एक बार फिर उद्धृत किया। साधारण रूप में कहें तो पौलुस द्वारा इतनी बार पुराने नियम के पदों को उद्धृत करना हमें यह दिखाता है कि वह अपनी धर्मशिक्षा की रचना करने के लिए बाइबल के अनुच्छेदों को संकलित कर रहा था।

तीसरा, जैसा कि धर्मशिक्षा-संबंधी हमारी परिभाषा सुझाव देती है, पौलुस ने इस विषय पर अपने दृष्टिकोणों को स्पष्ट किया। उसका संपूर्ण धर्मशिक्षा-संबंधी दावा यह था कि व्यवस्था के द्वारा धर्मी ठहराए जाने की पुष्टि पुराने नियम के द्वारा की जाती है। उसने कई तरीकों से अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया। पहला, उत्पत्ति 15:6 कहता है कि अब्राहम का विश्वास उसके लिए धार्मिकता "गिना" गया, और पौलुस स्पष्ट करता है कि जो "गिना" जाता है वह भले कार्यों से नहीं कमाया जाता। पौलुस ने यह भी स्पष्ट किया कि भजन 32:1-2 में इसी शब्द का इसी रूप में इस्तेमाल करने के द्वारा इस विचार की पुष्टि की। फिर पौलुस यह दर्शाते हुए आगे बढ़ा कि धार्मिकता व्यवस्था के बिना विश्वास के द्वारा थी क्योंकि अब्राहम उत्पत्ति 17 में ख़तने से पहले उत्पत्ति 15 में ही धर्मी गिना गया था।

इसके साथ-साथ, पौलुस ने इस बात पर बल दिया कि उत्पत्ति 17:5 में अब्राहम को प्रतिज्ञा दी गई थी कि वह यहूदियों और गैरयहूदियों दोनों का पिता होगा, अर्थात् उनका जिनके पास व्यवस्था है और उनका भी जिनके पास व्यवस्था नहीं है। वास्तव में, जिस प्रकार उसने दर्शाया कि उत्पत्ति 15:5 दर्शाता है कि अब्राहम की एकमात्र आशा परमेश्वर की प्रतिज्ञा में विश्वास करना थी क्योंकि उसके पास कोई संतान नहीं थी। और जैसा कि उत्पत्ति 17:17 और 18:11 दर्शाता है, विश्वास अब्राहम के लिए सुचारू रूप से आवश्यक था क्योंकि वह और उसकी पत्नी दोनों इतने ज्यादा वृद्ध थे कि सामान्य तरीके से संतान उत्पन्न नहीं कर सकते थे।

अंत में, पौलुस ने यह निष्कर्ष निकाला कि उत्पत्ति 15:6 अब्राहम के बारे में केवल एक ऐतिहासिक कथन से बढ़कर है; यह मसीही विश्वासियों के विश्वास के महत्व की शिक्षा है। संक्षेप में कहें तो, हम देखते हैं कि यीशु के समान, पौलुस ने भी स्वयं को धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श में शामिल किया था। उसने धर्मवैज्ञानिक विषयों पर बाइबल की शिक्षाओं को संकलित किया और उन्हें स्पष्ट किया।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

धर्मशिक्षा की हमारी परिभाषा और धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्शों की वैधता को समझने के अतिरिक्त यह भी बहुत महत्वपूर्ण है कि हम धर्मवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षाओं के लक्ष्यों को भी समझ लें।

लक्ष्य

यह समझने के लिए कि कैसे विधिवत धर्मविज्ञानी अपनी धर्मशिक्षाओं की रचना करते हैं, यह देखना आवश्यक है कि दो लक्ष्य धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्शों को नियंत्रित करते हैं। एक ओर तो धर्मशिक्षाएँ उन सच्ची शिक्षाओं को स्थापित करने के सकारात्मक लक्ष्य का आकार लेती हैं, जिन पर मसीह के अनुयायियों को विश्वास करना चाहिए। परंतु दूसरी ओर, वे झूठी धर्मशिक्षाओं का विरोध करने के नकारात्मक लक्ष्य के द्वारा भी आकार लेती हैं। ये दोनों लक्ष्य विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षाओं के चरित्र को गहराई से प्रभावित करते हैं। इसलिए, आइए पहले सच्ची धर्मशिक्षाओं की रचना करने के सकारात्मक लक्ष्य के साथ आरंभ करते हुए दोनों पर ध्यान दें।

सकारात्मक

जैसा कि हमने देखा है कि सच्चे विधिवत धर्मविज्ञानियों में पवित्रशास्त्र की शिक्षाओं का अनुसरण करने की तीव्र इच्छा होती है। सत्य को व्यक्त करने की चिंता विधिवत विज्ञानियों की अगुवाई करती है कि वे पवित्रशास्त्र को सत्य का सर्वोच्च न्यायी मानते हुए उसका अनुसरण करें। परंतु एक समस्या है जिसका सामना विधिवत धर्मविज्ञानी करते हैं। बाइबल बहुत से विषयों पर बहुत सी परस्पर संबंधित शिक्षाएँ प्रस्तुत करती है कि विधिवत धर्मविज्ञानी असमंजस में पड़ जाएंगे यदि उनके पास मार्गदर्शन के लिए केवल बाइबल ही होगी।

उदारण के लिए, ध्यान दें कि बाइबल मसीहशास्त्र, अर्थात् मसीह की धर्मशिक्षा, के बारे में कितना सिखाती है। कई रूपों में, पूरी बाइबल मसीह के बारे में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में बात करती है। यह उसके बारे में एक विशाल भंडारकक्ष का प्रतिनिधित्व करती है। और यदि विधिवत धर्मविज्ञानियों को उस प्रत्येक सच्ची बात को कहने का प्रयास करना हो जो बाइबल मसीह की धर्मशिक्षा के बारे में कहती है, तो वे कभी अपनी कलम के द्वारा उन्हें लिख नहीं पाएँगे।

तो फिर विधिवत धर्मविज्ञानी यह कैसे निर्धारित करते हैं कि बाइबल के किन भागों को वे सम्मिलित करेंगे या छोड़ देंगे?

विधिवत प्रक्रियाओं की सकारात्मक दिशा का मार्गदर्शन केवल पवित्रशास्त्र के द्वारा ही नहीं होता, बल्कि पारंपरिक मसीही महत्वों और प्राथमिकताओं के द्वारा भी। कई रूपों में, विधिवत धर्मविज्ञानी अतीत के विश्वासयोग्य मसीहियों के उदाहरण को देखते हुए यह निर्धारित करते हैं कि किन विषयों को संबोधित किया जाना चाहिए। अग्रणी धर्मविज्ञानियों के प्रयासों, विश्वासवचनों, अंगीकारों आदि का विधिवत धर्मविज्ञान में धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श के आकार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

नकारात्मक

अब विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षाओं को आकार देने के लिए सकारात्मक लक्ष्य जितने भी महत्वपूर्ण हों, विधिवत धर्मविज्ञानी उनकी धर्मशिक्षाओं की विषयवस्तु और महत्वों को नकारात्मक लक्ष्यों के अनुसार भी निर्धारित करते हैं। इसके द्वारा हमारा अर्थ यह है कि धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्शों का एक मुख्य उद्देश्य झूठी शिक्षाओं का खंडन करना भी है।

यह नकारात्मक लक्ष्य भी पवित्रशास्त्र से निकलता है। वास्तव में, बाइबल का एक बड़ा भाग झूठी शिक्षाओं का विरोध करने में समर्पित है। पवित्रशास्त्र का धर्मविज्ञान सदैव द्वि-भागी है, जो

धर्मशिक्षाओं की सकारात्मक प्रस्तुति और झूठी शिक्षाओं के प्रति नकारात्मक विरोध की ओर ध्यान केंद्रित करता है। इसलिए, जब विधिवत धर्मविज्ञानी किसी बात को चुनते हैं कि वे क्या सम्मिलित करेंगे या क्या छोड़ देंगे, किस पर महत्व देंगे और किसे नजरअंदाज करेंगे, तो उनके कई निर्णय झूठी धर्मशिक्षाओं को सही करने की इच्छा से प्रभावित होते हैं।

झूठी शिक्षाओं का विरोध करने के अतिरिक्त, क्योंकि पवित्रशास्त्र ऐसा ही करता है, विधिवत धर्मविज्ञानी इस नकारात्मक लक्ष्य को भी अपना लेते हैं क्योंकि वे पारंपरिक मसीही महत्वों और प्राथमिकताओं का अनुसरण करने का प्रयास करते हैं।

विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षा-संबंधी रचनाओं के इस पक्ष पर आवश्यकता से अधिक महत्व देना बहुत कठिन होगा। उदाहरण के लिए उस बारे में सोचें जो 451 में लिखे चाल्सीदोन के विश्वासवचन ने मसीह के व्यक्तित्व और स्वभाव के बारे में कहा है। वहाँ यह लिखा है :

> [मसीह] वास्तविक परमेश्वर और वास्तविक मनुष्य है...जो दो स्वभावों में, बिना असमंजस, बिना परिवर्तन, बिना विभाजन, बिना अलगाव के पहचाना गया; स्वभावों का अंतर एकता के कारण किसी भी प्रकार से निरस्त नहीं होता, बल्कि प्रत्येक व्यक्तित्व के चरित्र एक व्यक्तित्व और अस्तित्व की रचना करने के लिए बने रहते है और एक साथ आते हैं, न कि अलग-अलग या दो व्यक्तित्वों के विभाजन के रूप में।

अब एक भाव में यह कथन पवित्रशास्त्र के प्रति सच्चे होने और विश्वासयोग्य मसीहियों के विश्वास की अभिव्यक्ति के सकारात्मक लक्ष्य की अगुवाई प्राप्त करता है। यह काफी स्पष्ट है। परंतु एक बार फिर से देखें कि विश्वासवचन मसीह के बारे में क्या कहता है। मसीह के बारे में कही जा सकने वाली सारी बातों में से चाल्सीदोन ने यही क्यों कहा कि कैसे दो स्वभाव अपने ईश्वरीय और मानवीय गुणों को बनाए रख सकते हैं? उसने क्यों कहा कि ये स्वभाव बिना किसी असमंजस के थे, यह कि वे परिवर्तित नहीं होते, यह कि वे विभाजित नहीं हो सकते, यह कि वे अलग-अलग नहीं हो सकते? इसने क्यों इस बात पर बल दिया कि मसीह के दो स्वभाव एक ही व्यक्तित्व में एक हो जाते हैं? इन विषयों पर पवित्रशास्त्र में बल नहीं दिया गया है। परंतु यही वह कारण था जिसके लिए विश्वासवचन को इन पर चर्चा करनी पड़ी।

वास्तव में, चाल्सीदोन का विशेष महत्व मसीह के बारे में उन झूठी शिक्षाओं के प्रत्युत्तर में विकसित हुआ जो मसीहियत की आरंभिक सदियों में उठ खड़ी हुई थीं। इनमें से कुछ झूठी शिक्षाओं ने मसीह के पूर्ण मनुष्यत्व का ही इनकार कर दिया था, अन्यों ने उसके पूर्ण ईश्वरत्व का इनकार कर दिया था, और अन्यों ने इस बात का इनकार कर दिया था कि वह केवल एक ही व्यक्ति था।

और लगभग इसी तरह से, औपचारिक विधिवत धर्मविज्ञानों में बहुत से धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श इस तरह की नकारात्मक बातों को अपनाते हैं। उदाहरण के लिए, जब चार्ल्स होज ने अपनी पुस्तक सिस्टेमेटिक थियोलोजी के भाग 1 के अध्याय 4 में परमेश्वर के ज्ञान की धर्मशिक्षा पर चर्चा की, तो उसने एक संक्षिप्त अनुच्छेद के साथ आरंभ किया, जिसमें उसने सकारात्मक रूप से स्पष्ट किया कि :

> पवित्रशास्त्र की यह स्पष्ट धर्मशिक्षा है कि परमेश्वर को जाना जा सकता है।

परंतु इस आरंभिक स्वीकारोक्ति के ठीक बाद, होज ने लंबे अनुच्छेदों में परमेश्वर को जानने के अर्थ के विषय में तीन झूठी धारणाओं पर चर्चा की। अन्य शिक्षाओं के विरोध में, उसने सबसे पहले यह कहा :

> इसका अर्थ यह नहीं है कि हम उस सब को जान सकते हैं जो परमेश्वर के संबंध में सत्य है।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

इसके पश्चात् वह आगे बढ़ता है और यह कहते हुए एक और झूठी शिक्षा को संबोधित करता है :

> [हमें यह नहीं मानना चाहिए] कि हम परमेश्वर के एक मानसिक स्वरूप की रचना कर सकते हैं।

और तीसरा, उसने लिखा :

> [हमें यह नहीं मानना चाहिए] कि [परमेश्वर] को समझा जा सकता है (या व्यापक रूप से जाना जा सकता है)।

झूठे दृष्टिकोणों के प्रति इन नकारात्मक खंडनों का अनुसरण करते हुए, होज सकारात्मक तरीके से इस स्पष्टीकरण पर लौटता है कि कैसे परमेश्वर को जाना जा सकता है। जो कुछ होज ने यहाँ किया है वह विधिवत धर्मविज्ञान में बहुत ही विशिष्ट है।

अतः, हम देखते हैं कि धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्शों को कम से कम दो मुख्य इच्छाओं के द्वारा आकार दिया जाता है : सत्य को व्यक्त करने की इच्छा, परंतु साथ ही झूठ का विरोध करने की इच्छा भी।

अब क्योंकि हमारे पास विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षाओं की एक मूलभूत परिभाषा है और हमने धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्शों के लक्ष्यों और वैधता को देख लिया है, इसलिए हमें अब अपने दिशा-निर्धारण के तीसरे पहलू की ओर मुड़ना चाहिए, वह है, विधिवत धर्मविज्ञान की संपूर्ण पाठ्यक्रम में धर्मशिक्षाओं का स्थान।

स्थान

पिछले अध्यायों में, हमने यह देखा है कि मध्यकालीन अवधि से ही धर्मविज्ञान का निर्माण चार मूलभूत चरणों के साथ हुआ था : सावधानी से परिभाषित तकनीकी शब्दों की रचना, तर्क-वाक्यों की रचना, इसके पश्चात् धर्मशिक्षाओं की रचना, और अंत में, मान्यताओं की एक व्यापक पद्धति।

अब हमें सदैव यह स्मरण रखना चाहिए कि विधिवत धर्मविज्ञान में चरणों के रूप में इन विषयों को बताना कुछ सीमा तक बनावटी है। वास्तव में विधिवत धर्मविज्ञानी स्वयं को इन सभी चरणों में हर समय लगाए रखते हैं। परंतु यह विधिवत धर्मविज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया को सोचने में सहायता करता है जो कि सरलता से जटिलता की ओर बढ़ती रहती है। सबसे निम्न स्तर पर, धर्मविज्ञान-संबंधी तकनीकी शब्द विधिवत धर्मविज्ञान की सबसे मूलभूत निर्माणात्मक इकाइयों को बनाते हैं। सावधानी से परिभाषित शब्दावली के बिना, ठोस विधिवत धर्मविज्ञान का निर्माण करना बहुत कठिन होगा। दूसरा चरण तर्क-वाक्यों की रचना का है। यदि हम तकनीकी शब्दों को विधिवत प्रक्रियाओं में निर्माणात्मक इकाइयों के रूप में देखते हैं, तो हम तर्क-वाक्यों को इकाइयों की पँक्तियों के रूप में सोच सकते हैं जो तकनीकी शब्दों का प्रयोग करते हैं और उन्हें स्पष्ट करते हैं। और हम धर्मशिक्षाओं का वर्णन तर्क-वाक्यों की पँक्तियों के रूप में कर सकते हैं जो पूरी दीवारों के हिस्सों या पूरी दीवारों का निर्माण करते हैं। और अंत में, धर्मविज्ञान की पद्धति उन तरीकों को प्रस्तुत करती है जिनमें धर्मवैज्ञानिक धर्मशिक्षा-संबंधी कथनों से एक पूर्ण भवन का निर्माण करते हैं। इस तरह से हम देखते हैं कि जैसे एक भवन के लिए दीवारें आवश्यक हैं,वैसे ही विधिवत धर्मविज्ञान के निर्माण में धर्मशिक्षाएँ एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

अब क्योंकि हमने विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षाओं की ओर एक सामान्य दिशा-निर्धारण को प्राप्त कर लिया है, इसलिए हमें अपने दूसरे मुख्य विषय की ओर मुड़ना चाहिए : धर्मशिक्षाओं की रचना। विधिवत धर्मविज्ञानी उन धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्शों की रचना कैसे करते हैं जो उनकी परियोजना के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होती हैं।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

रचना

जब विद्यार्थी पहले-पहल विधिवत धर्मविज्ञान का अध्ययन करना आरम्भ करते हैं तो अक्सर उनमें एक गलत प्रभाव होता है कि धर्मशिक्षा पवित्रशास्त्र में से तर्कवाक्यों-संबंधी सत्यों को इकट्ठा करने की अपेक्षा एक थोड़े बड़े कार्य का परिणाम होती हैं। एक नए विद्यार्थी के लिए यह पूरा कार्य अक्सर बहुत ही सरल प्रतीत होता है। परंतु औपचारिक विधिवत धर्मविज्ञान में धर्मशिक्षाओं की रचना में कार्यरत प्रक्रियाएँ वास्तव में बहुत ही जटिल होती हैं। सच्चाई तो यह है कि, उनमें इतने भिन्न कारक शामिल होते हैं कि एक गहन विश्लेषण असंभव हो जाता है। फिर भी हम विधिवत धर्मविज्ञान में धर्मशिक्षाओं की रचना के सामान्य तरीकों से भी कुछ विचारों को प्राप्त कर सकते हैं।

विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षाओं की रचना में होने वाली प्रक्रियाओं को समझने के लिए हम दो विषयों को देखेंगे : पहला हम उन तरीकों को देखेंगे जिनमें विधिवत धर्मविज्ञानी अपने दृष्टिकोणों के लिए बाइबल के समर्थन को विकसित करते हैं। और दूसरा, हम यह देखेंगे कि कैसे विधिवत धर्मविज्ञानी अपनी धर्मशिक्षाओं की व्याख्या और समर्थन के लिए तर्क का प्रयोग करते हैं। आइए सर्वप्रथम धर्मशिक्षाओं के लिए बाइबल आधारित समर्थन पर ध्यान दें।

बाइबल आधारित समर्थन

अब, यह स्मरण रखना सदैव महत्वपूर्ण है कि विधिवत धर्मविज्ञानी अक्सर अपने विषयों का निर्माण दर्शनशास्त्रीय और ऐतिहासिक रूप से करते हैं। किसने क्या विश्वास किया, और कब उन्होंने इन बातों पर विश्वास किया? क्या वे सही थे या क्या वे गलत थे? इस तरह की बातें कभी-कभी बहुत महत्वपूर्ण हो सकती हैं, विशेषकर जब विधिवत धर्मविज्ञानी धर्मशिक्षाओं के इतिहास के बारे में बात करते हैं और उनके दृष्टिकोणों का विरोध करने वाले झूठ को पहचानने का प्रयास करते हैं। परंतु सामान्यत: विधिवत धर्मविज्ञानियों द्वारा अपने धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्शों के लिए समर्थन पाने का सबसे महत्वपूर्ण तरीका पवित्रशास्त्र से समर्थन पाने का प्रयास करना है।

हम धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्शों में बाइबल आधारित समर्थन की जाँच दो तरीकों से करेंगे। पहला, हम उस मूल प्रक्रिया का विवरण देंगे जिसका अनुसरण विधिवत धर्मविज्ञानी तब करते हैं, जब वे अपने दृष्टिकोणों को बाइबल आधारित समर्थन के लिए एकत्रित करते हैं। और दूसरा, हम विधिवत धर्मविज्ञान में इस प्रक्रिया के एक उदाहरण को देखेंगे। आइए सबसे पहले उस मूल प्रक्रिया को देखें, जिसका अनुसरण विधिवत धर्मविज्ञानी तब करते हैं, जब वे पवित्रशास्त्र से अपने विषय का निर्माण करते हैं।

प्रक्रिया

पहले के अध्यायो में, हमने देखा कि विधिवत धर्मविज्ञानी पवित्रशास्त्र को तथ्यात्मक कटौती के अधीन करने के द्वारा पवित्रशास्त्र के साथ कार्य करना आरंभ करते हैं। वे ऐसे धर्मवैज्ञानिक तथ्यों को देखते हैं जिनकी शिक्षा बाइबल के अनुच्छेद देते हैं। और जैसा कि हमने पहले ही देखा है कि वे इन तथ्यों का मिलान धर्मवैज्ञानिक तर्क-वाक्यों में करते हैं। परंतु जब विधिवत धर्मविज्ञानी धर्मशिक्षाओं की रचना की ओर आगे बढ़ते हैं, तो वे इन मूल प्रक्रियाओं से आगे बढ़कर विशाल स्तर के संकलन और व्याख्या की ओर चले जाते हैं।

जब हम विशाल स्तर के संकलन और व्याख्या के बारे में बोलते हैं, तो हमारे मन में यह बात होती है कि विधिवत धर्मविज्ञानी बाइबल आधारित शिक्षाओं के विभिन्न पहलुओं का मिलान करने की प्रक्रिया को जारी रखते हैं। वे विशाल, अधिक जटिल धर्मवैज्ञानिक संकलन के लिए धर्मवैज्ञानिक तर्क-वाक्यों का

प्रयोग करते हैं। जब तक वे किसी धर्मवैज्ञानिक विषय पर अपने विचार विमर्श को समाप्त नहीं कर लेते, तब तक बाइबल आधारित शिक्षाओं की परतों पर परतें चढाते रहते हैं। वास्तव में, धर्मशिक्षा-संबंधी विचार विमर्श में संकलनों की परतें और बहुत विशाल और जटिल धर्मवैज्ञानिक विचारों की व्याख्याएँ पाई जाती हैं।

इन मूल प्रक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए, हमें एक उदाहरण देखना चाहिए।

उदाहरण

उदाहरण के द्वारा, हम "सिद्धतावाद के सिद्धांत के प्रति आपत्तियों" पर बेर्खोफ़ के विचार-विमर्श को देखेंगे जो उसकी पुस्तक सिस्टेमेटिक थियोलोजी के भाग 4, अध्याय 10 में पाया जाता है। सिद्धतावाद से कुछ विश्वासियों की ऐसी मान्यता है कि हम इस जीवन में पूरी तरह से पाप से छुटकारा प्राप्त कर सकते हैं, और इस भाग में बेर्खोफ़ ने इस झूठे दृष्टिकोण का विरोध करने के नकारात्मक लक्ष्य के लिए बाइबल आधारित समर्थन को एकत्र किया है। बेर्खोफ़ के प्रस्तुतीकरण में, उसने सबसे पहले यह दावा किया कि :

> पवित्रशास्त्र के प्रकाश में सिद्धतावाद की धर्मशिक्षा पूर्ण रूप से असमर्थनीय है।

फिर उसने अपने दृष्टिकोण को तीन लंबे अनुच्छेदों में प्रमाणित करने का प्रयास किया, जिनमें से प्रत्येक एक मूल दावा करता है। पहला अनुच्छेद यह कहता है :

> बाइबल आश्वस्त करती है कि पृथ्वी पर ऐसा कोई भी नहीं है जो पाप नहीं करता।

दूसरा अनुच्छेद इस दावे के साथ आरंभ होता है :

> पवित्रशास्त्र के अनुसार परमेश्वर की संतान के जीवनों में शरीर और आत्मा के बीच एक निरंतर युद्ध चलता रहता है, और यहाँ तक कि उनमें से सर्वोत्तम भी सिद्धता के लिए अभी भी प्रयास कर रहे हैं।

और उसका तीसरा अनुच्छेद ऐसे आरंभ होता है :

> [पवित्रशास्त्र में] पाप के अंगीकार और क्षमा के लिए प्रार्थना की निरंतर मांग की जाती है।

बेर्खोफ़ का प्रस्तुतीकरण समझने में इतना कठिन नहीं है। उसने तर्क दिया कि सिद्धतावाद पवित्रशास्त्र के विरोध में है क्योंकि पवित्रशास्त्र यह सिखाता है कि इस पृथ्वी पर रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति पाप करता है, कि सभी विश्वासी पाप के साथ संघर्ष करते हैं, और कि प्रत्येक को अंगीकार और क्षमा पाने का प्रयास करना चाहिए।

अब जहाँ बेर्खोफ़ के दृष्टिकोण को उसी तरीके से समझा जा सकता है जिसमें उसने इसे पुस्तक में प्रस्तुत किया है, वहीं हम पीछे की ओर कार्य करना चाहते हैं ताकि यह देख सकें कि उसने अपनी प्रस्तुति के लिए बाइबल आधारित समर्थन को कैसे एकत्र किया।

बेर्खोफ़ ने या तो उन्नीस बाइबल आधारित अनुच्छेदों को उद्धृत किया या फिर उनका उल्लेख किया। इन पदों को तीन समूहों में एकत्र करने के बाद बेर्खोफ़ ने ऐसे तर्क-वाक्यों की रचना की जिन्हें उसने बाइबल के इन लेखों से लिया था। पहले अनुच्छेद में, उसने केवल पहले छः बाइबल आधारित उल्लेखों को सूचीबद्ध किया और उनका निष्कर्ष दिया :

> बाइबल हमें आश्वस्त करती है कि पृथ्वी पर ऐसा कोई भी नहीं है जो पाप नहीं करता।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

दूसरे अनुच्छेद में, बेर्खोफ़ ने एक सरल धर्मवैज्ञानिक तर्क-वाक्य के साथ प्रत्येक पद को अलग-अलग रूप से सारांशित किया। रोमियों 7:7-26 का उल्लेख करते हुए, बेर्खोफ़ ने लिखा :

> पौलुस इस संघर्ष का एक बहुत ही उल्लेखनीय विवरण देता है...जो निश्चित रूप से उसका उल्लेख उसके नवजीवन की अवस्था में करता है।

गलातियों 5:16-24 का उल्लेख करते हुए उसने यह लिखा :

> [पौलुस] एक संघर्ष के बारे में बात करता है जो परमेश्वर की सभी संतानों को चारित्रित करता है।

फिलिप्पियों 3:10-14 का उल्लेख करते हुए उसने यह कहा :

> [पौलुस] व्यावहारिक जीवन में अपने कार्यजीवन के अंत में अपने बारे में बात करता है, एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जो अभी तक सिद्धता तक नहीं पहुँचा है।

पवित्रशास्त्र से इन तर्क-वाक्यों की रचना करने के पश्चात्, उसने अपने इन तीन तर्क-वाक्यों को लिया और उन्हें एक व्यापक सत्य में संकलित किया। जैसा कि उसने लिखा :

> पवित्रशास्त्र के अनुसार परमेश्वर की संतान के जीवनों में शरीर और आत्मा के बीच एक निरंतर युद्ध चलता रहता है, और यहाँ तक कि उनमें से सर्वोत्तम भी सिद्धता के लिए अभी भी प्रयास कर रहे हैं।

तीसरे अनुच्छेद में, बेर्खोफ़ ने सरल तर्क-वाक्यों के साथ पदों को सारांशित करना जारी रखा। पहला, उसने मत्ती 6:12-13 का इन शब्दों को लिखते हुए उल्लेख किया :

> यीशु ने अपने सभी शिष्यों को पापों की क्षमा के लिए प्रार्थना करने की शिक्षा दी।

तब उसने बस 1 यूहन्ना 1:9 को उद्धृत किया, यह दर्शाते हुए कि उसने समान विषय को दोहराया।

इसके आगे, बेर्खोफ़ ने अय्यूब, भजन संहिता, नीतिवचन, यशायाह, दानिय्येल, और रोमियों के पदों का उल्लेख किया जो पवित्र लोगों द्वारा क्षमा के लिए प्रार्थना करने के उदाहरणों को दोहराते हैं, और इन पदों के आधार पर उसने इन तर्क-वाक्यों की रचना की :

> बाइबल के पवित्र लोगों को निरंतर अपने पापों का अंगीकार करते हुए प्रस्तुत किया गया है।

पवित्रशास्त्र से इन तर्क-वाक्यों की रचना करने के पश्चात्, उसने इस उच्च दावे में अपने दो और मूल धर्मवैज्ञानिक तर्क-वाक्यों को संकलित किया कि :

> पाप का अंगीकार और क्षमा के लिए प्रार्थना की मांग पवित्रशास्त्र में निरंतर की गई है।

अतः, हम देखते हैं कि बेर्खोफ़ ने संकलन और व्याख्या की विशाल और अधिक जटिल परतों के माध्यम से सिद्धतावाद की धर्मशिक्षा के अपने विचार-विमर्श में तीन मुख्य बाइबल आधारित दावों को विकसित किया — प्रत्येक अनुच्छेद में एक। पहले अनुच्छेद में उसने दावा किया, “बाइबल हमें आश्वस्त करती है कि पृथ्वी पर ऐसा कोई भी नहीं है जो पाप नहीं करता।” दूसरे अनुच्छेद में उसने दावा किया, “पवित्रशास्त्र के अनुसार परमेश्वर की संतान के जीवनों में शरीर और आत्मा के बीच एक युद्ध निरंतर

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

चलता रहता है, और यहाँ तक कि उनमें से सर्वोत्तम भी सिद्धता के लिए अभी भी प्रयास कर रहे हैं।" और तीसरे अनुच्छेद में उसने दावा किया, "पाप का अंगीकार और क्षमा के लिए प्रार्थना की मांग [पवित्रशास्त्र में] निरंतर की गई है।"

तब सिद्धतावाद के धर्मशिक्षा-संबंधी विचार विमर्श को पूरा करने के लिए, बेर्खोफ़ इन तीनों दावों को एक उच्च स्तरीय संकलन में लेकर आया। उसने यह निष्कर्ष निकाला :

पवित्रशास्त्र के प्रकाश में सिद्धतावाद की धर्मशिक्षा पूर्णरूप से अस्थिर है।

अब, विधिवत धर्मविज्ञानियों के लेख सदैव उतने स्पष्ट और सीधे नहीं होते जितने यह उदाहरण सुझाव देता है। परंतु हमने यहाँ उन तरीकों की विशेषता को देखा है जिन्हें विधिवत धर्मविज्ञानी अपनी धर्मशिक्षाओं के लिए बाइबल आधारित समर्थन को प्राप्त करते हैं। वे पवित्रशास्त्र को तथ्यों तक सीमित कर देते हैं, वे उन तथ्यों का मिलान धर्मवैज्ञानिक तर्क-वाक्यों को विकसित करने के लिए करते हैं, और वे उन तर्क-वाक्यों का संकलन धर्मवैज्ञानिक दावों के उच्च और अधिक जटिल स्तरों में करते हैं।

यह वह मूल प्रक्रिया है जिसका अनुसरण हर बार किया जाता है जब विधिवत धर्मविज्ञानी अपनी धर्मशिक्षाओं के लिए बाइबल आधारित समर्थन को एकत्र करते हैं।

अब क्योंकि हमने यह देख लिया है कि विधिवत धर्मविज्ञानी अपनी धर्मशिक्षाओं के लिए बाइबल से समर्थन को कैसे प्राप्त करते हैं, इसलिए हमें अब उन तरीकों की ओर मुड़ना चाहिए जिनमें वे अपने दृष्टिकोणों के लिए तार्किक समर्थन को पाते हैं।

तार्किक समर्थन

यद्यपि विधिवत धर्मविज्ञानी विधिवत धर्मविज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया के प्रत्येक चरण में तर्क वितर्कों का प्रयोग करते हैं, तर्क वितर्क विशेष रूप से महत्वपूर्ण होता है जब वे अपनी धर्मशिक्षाओं की रचना करते हैं।

धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्शों के लिए तार्किक समर्थन के तीन मूल पहलुओं को स्पर्श करना सहायक होगा। पहला, हम तर्क के अधिकार को देखेंगे। विधिवत धर्मविज्ञान तर्क का कितना अधिकार मानता है? दूसरा, हम यह देखेंगे कि विधिवत धर्मविज्ञानी पवित्रशास्त्र के निगमनात्मक अर्थों से लेते हुए तार्किक समर्थन को कैसे स्थापित करते हैं – अर्थात् वे किस प्रकार से तर्क के द्वारा बाइबल में से दृष्टिकोणों का पता लगाते हैं। और तीसरा, हम निश्चितता के उस स्तर की ओर मुड़ेंगे जो विवेचनात्मक तर्क धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्शों को प्रदान करता है। कितना भरोसा हम उन विवेचनात्मक तर्क आधारित अध्ययनों में रख सकते हैं, जो धर्मशिक्षाओं को स्थापित करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं? आइए सबसे पहले तर्क के अधिकार के विषय में सोच विचार करें।

अधिकार

इस श्रृंखला के पहले के अध्यायों में, हमने देखा था कि जब मसीही विश्वास यहूदी संस्कृति के अपने आधार से आगे बढ़ा और पूरे भूमध्यसागरीय संसार में फ़ैल गया, तो मसीही धर्मविज्ञानियों ने सोच विचार की यूनानी विचाराधारा पर अधिक ध्यान दिया।

धर्माध्यक्षीय अवधि में, नीओ-प्लेटोवाद के साथ पारस्परिक वार्तालाप ने मसीही धर्मविज्ञान के लिए तार्किक विश्लेषण में रूचि को बढ़ा दिया। परंतु आरंभिक कलीसिया-पूर्वजों ने इस स्वीकारोक्ति के साथ उनके विवेकपूर्ण विचारों को सीमित कर दिया कि मसीही विश्वास के गहन सत्यों को ऐसे रहस्यवादी प्रकाशनों के द्वारा ही समझा जा सकता है जो तार्किक विश्लेषण की सीमाओं से परे हों।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

मध्यकालीन युग के दौरान मसीही विद्वानों ने तर्क-वितर्क या विवेक को अधिक अधिकार प्रदान किया। जब विद्वानों ने धर्मविज्ञान पर अरस्तू के तर्क के दृष्टिकोणों को लागू किया, तो धर्मवैज्ञानिक विचार-विमर्श तार्किक कार्य बन गए। मसीही रहस्यवादियों के विरोध के विरुद्ध मसीही विद्वानों ने मसीही विश्वास के सभी पहलुओं पर जितना संभव हुआ उतने तर्क को लागू कर दिया। बहुत से विषयों में, विद्वतावाद में तार्किक विश्लेषण इतना महत्वपूर्ण बन गया कि तर्क-वतर्क ने पवित्रशास्त्र के प्रयोग से अधिक महत्व ले लिया।

प्रोटेस्टेंट धर्मविज्ञानियों ने अपनी धर्मशिक्षा सोला स्क्रिपचरा, अर्थात् केवल पवित्रशास्त्र के साथ मध्यकालीन बुद्धिवाद की इस प्रवृत्ति का खंडन किया। प्रोटेस्टेंटवादियों ने कलीसिया को पूर्ण रूप से बाइबल के अधिकार के लिए समर्पित होने के लिए कहा, और मनुष्य के तर्क से भी अधिक बाइबल का अधिकार रखने को। यद्यपि इस विषय पर प्रोटेस्टेंटवादियों में सदैव भिन्नतायें रही हैं, परंतु सामान्य रूप में, प्रोटेस्टेंटवादियों ने तर्क के बारे में दो सत्यों को माना है।

एक ओर, प्रोटेस्टेंटवादियों ने यह अनुभव कर लिया है कि तार्किक रूप से तर्क करने की क्षमता एक महत्वपूर्ण योग्यता है। यह परमेश्वर की ओर से उपहार है, और इसका उस समय पूरे उत्साह के साथ उपयोग किया जाना चाहिए जब हम धर्मविज्ञान का निर्माण करते हैं। परंतु दूसरी ओर, तार्किक रूप से तर्क करने की क्षमता फिर भी एक सीमित योग्यता है, जिसका प्रयोग पवित्रशास्त्र में परमेश्वर के प्रकाशन के अधीन किया जाना चाहिए।

तर्क पर इस दोहरे दृष्टिकोण के एक महत्वपूर्ण उदाहरण को उन तरीकों में देखा जा सकता है जिनमें सच्चे विधिवत धर्मविज्ञानी गैर-विरोधाभास के नियम का प्रयोग करते हैं। वे गैर-विरोधाभास के सिद्धांत को बहुत अधिक महत्व देते हैं, परंतु साथ ही इसकी सीमाओं को भी समझते हैं।

गैर-विरोधाभास का नियम एक पहला सिद्धांत या तर्क का नियम है जिस पर अरस्तू ने महारत हासिल की थी और मसीही धर्मविज्ञानियों में से अधिकांश ने किसी न किसी तरह से इसकी पुष्टि थी। इस सिद्धांत को कई तरीकों से दर्शाया जा सकता है, परंतु यहाँ हमारे उद्देश्यों के लिए इस तरीके से सारांशित किया जा सकता है : “कोई भी बात एक ही समय में और एक ही भाव में सत्य या फिर असत्य नहीं हो सकती।” उदाहरण के लिए, प्रतिदिन के जीवन में हम कह सकते हैं कि एक कुत्ता एक ही समय और एक ही अर्थ में या तो कुत्ता हो सकता है या फिर कुत्ता नहीं हो सकता है। या धर्मविज्ञान में, हम कह सकते हैं कि यीशु एक ही समय और एक ही अर्थ में या तो उद्धारकर्ता हो सकता है या फिर नहीं हो सकता।

अब, जैसे सच्चे प्रोटेस्टेंट धर्मविज्ञानियों ने सामान्य रूप से तर्क को दो तरीकों से देखा है, उन्होंने साथ ही ग़ैर-विरोधाभास के सिद्धांत को भी दो तरीकों से देखा है। एक ओर, ग़ैर-विरोधाभास के सिद्धांत को विधिवत धर्मविज्ञान में बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। यह हमारे लिए परमेश्वर का उपहार है। यह हमें धर्मवैज्ञानिक विषयों में सावधानीपूर्वक तर्क वितर्क को लागू करने की योग्यता देता है, जिससे सत्य को झूठ से अलग करने का कार्य संभव हो सके।

फिर भी, पिछली एक सहस्त्राब्दी से विश्वासयोग्य प्रोटेस्टेंट धर्मविज्ञानियों के पास एक और दृष्टिकोण रहा है। जैसा कि हमारी सारी तर्क वितर्क करने की क्षमता के साथ होता है, वैसे ही ग़ैर-विरोधाभास का सिद्धांत सीमित है जब हम इसका उपयोग पवित्रशास्त्र की खोज करने के लिए करते हैं। इसका प्रयोग बाइबल की अधीनता में किया जाना चाहिए।

पवित्रशास्त्र के प्रति ग़ैर-विरोधाभास के सिद्धांत की अधीनता महत्वपूर्ण है, क्योंकि कई बार पवित्रशास्त्र में विरोधाभास प्रतीत होता है। वे ऐसी बातों का दावा करते प्रतीत होते है जो कि तार्किक रूप से परस्पर असंगत होती हैं। उस समय विधिवत धर्मविज्ञानी क्या करते हैं जब ऐसी घटना होती है? वे कैसे इन स्पष्ट विरोधों को संभालते हैं जब वे बाइबल की शिक्षाओं को तार्किक रूप से संकलित करने का प्रयास करते हैं?

सामान्य रूप में, विधिवत धर्मविज्ञानी एक या दो तथ्थों पर बल देने के द्वारा बाइबल के ऐसे स्पष्ट विरोधाभासों का प्रत्युत्तर देते हैं : हमारी चूकता और हमारी सीमितता। एक ओर, पवित्रशास्त्र अक्सर विरोधाभासी प्रतीत होता है क्योंकि हम त्रुटिपूर्ण प्राणी हैं। दूसरे शब्दों में, पाप ने हमारी सोच को भ्रष्ट कर दिया है जिससे हम त्रुटियों में पड़ जाते हैं। क्योंकि हम त्रुटिपूर्ण प्राणी हैं, हम कई बार बाइबल को गलत रूप में पढ़ते हैं, और ऐसे विरोधाभासों की कल्पना करते हैं जहाँ वास्तव में विरोधाभास होते ही नहीं।

अब, हम सभी साधारण वार्तालापों से जानते हैं कि जब लोग स्वयं में ही विरोधाभासी प्रतीत होते हैं, तो कुछ प्रश्नों या थोड़े सहानुभूतिपूर्वक सुनने के द्वारा विषयों को स्पष्ट किया जा सकता है। कुछ इसी तरह की बात पवित्रशास्त्र के साथ भी लागू होती है। कई बार, पवित्रशास्त्र विरोधाभासी प्रतीत हो सकता है, परंतु गहन अध्ययन विषयों को स्पष्ट कर देगा। उदाहरण के लिए, नीतिवचन 26:4-5 पर ध्यान दें :

> मूर्ख को उसकी मूर्खता के अनुसार उत्तर न देना,
> ऐसा न हो कि तू भी उसके तुल्य ठहरे।
> मूर्ख को उसकी मूढ़ता के अनुसार उत्तर देना,
> ऐसा न हो कि वह अपने लेखे में बुद्धिमान ठहरे (नीतिवचन 26:4-5)।

सदियों से, कई संदेहवादियों ने यह तर्क दिया है कि ये पद आपस में विरोधाभासी हैं। पद 4 हमें कहता है कि मूर्ख को उसकी मूर्खता के अनुसार उत्तर न देना और पद 5 हमें कहता है कि मूर्ख को उसकी मूढ़ता के अनुसार उत्तर देना। परंतु सच्चाई यह है कि ये दोनों पद एक भाव में "मूर्ख को उसकी मूढ़ता के अनुसार उत्तर देना" की अभिव्यक्ति का प्रयोग नहीं करते। इसकी अपेक्षा, प्रत्येक पद सरल रूप से हमें बताता है कि एक कार्य को कब किया जाए और दूसरे कार्य को कब। थोड़ी सी सावधानी के साथ किए हुए मनन के साथ, हम देख सकते हैं कि जहाँ इस तरह के अनुच्छेद विरोधाभासी दिखाई दे सकते हैं, परंतु वास्तव में वे होते नहीं।

यह उदाहरण इस बात को प्रस्तुत करता है कि विधिवत धर्मविज्ञानी पवित्रशास्त्र की शिक्षाओं को सामंजस्यपूर्ण बनाने में कठिन परिश्रम क्यों करते हैं। वे पवित्रशास्त्र के पास इस अपेक्षा के साथ आते हैं कि वे तार्किक रूप से सुसंगत हैं क्योंकि वे परमेश्वर की ओर से आते हैं जो झूठ नहीं बोलता। इसके अतिरिक्त, विधिवत धर्मविज्ञानी अपने अनुभव से जानते हैं कि जब ग़ैर-विरोधाभास का सिद्धांत सावधानी से पवित्रशास्त्र पर लागू किया जाता है, तो स्पष्ट विरोधाभास भी अक्सर लुप्त हो जाते हैं।

अब इस बात को स्मरण रखना जितना महत्वपूर्ण है कि पवित्रशास्त्र कई बार विरोधाभासी प्रतीत होता है क्योंकि हमने उसे गलत रूप से समझ लिया है, उतना ही महत्वपूर्ण यह याद रखना भी है कि कई बार वह हमारी सीमितता के कारण भी ऐसा प्रतीत होता है। वे तार्किक रूप से असंगत जान पड़ते हैं क्योंकि हम उसे पूरी तरह से समझ ही नहीं सकते।

याद रखें, हमारा असीम परमेश्वर हमारी समझ से परे है। इसलिए, जब वह स्वयं को सीमित प्राणियों पर प्रकट करता है, तो उसके कथन कई बार हमें विरोधाभासी प्रतीत होते हैं। परंतु ऐसा इसलिए नहीं हैं कि परमेश्वर या पवित्रशास्त्र वास्तव में आपस में विरोधाभासी हैं। बल्कि, ऐसा इसलिए है क्योंकि हम इतने सीमित हैं कि हम समझ नहीं सकते कि वे सुसंगत कैसे हैं। अतः जब पवित्रशास्त्र का सावधानी से किया हुआ अध्ययन बाइबल की विभिन्न शिक्षाओं की तार्किक सांमजस्यता को समझ नहीं पाता, तो सच्चे विधिवत धर्मविज्ञानी पवित्रशास्त्र को अस्वीकार नहीं कर देते। इसकी अपेक्षा, वे मानते हैं कि पवित्रशास्त्र सत्य है, और वे स्पष्ट विरोधाभासों के समाधान को समझ ही नहीं पाते।

आइए देखें कि यह दृष्टिकोण एक धर्मशिक्षा-संबंधी स्तर पर दो पारंपरिक धर्मशिक्षाओं के साथ कैसे कार्य करता है : ईश्वरीय सर्वश्रेष्ठता की धर्मशिक्षा और ईश्वरीय सर्वव्यापकता की धर्मशिक्षा। ईश्वरीय सर्वश्रेष्ठता बाइबल की उस शिक्षा का उल्लेख है कि परमेश्वर रचित ब्रह्मांड की सारी सीमाओं से ऊपर है, जिसमें स्थान और समय दोनों सम्मिलित हैं। ईश्वरीय सर्वव्यापकता बाइबल की उस शिक्षा का उल्लेख है

कि परमेश्वर स्थान और समय में पूरी तरह से सम्मिलित है, वह रचित ब्रह्मांड के हर विषय में कार्यरत है। अब, यदि यह सच्चाई नहीं होती कि बाइबल परमेश्वर के बारे में इन दोनों ही सत्यों के विषय में बात करती है, तो हममें से बहुत से ऐसा सोचने लगते कि ये विचारधाराएँ विरोभाभासी हैं। आखिरकार, सर्वश्रेष्ठता को सर्वव्यापकता के विपरीत समझा जाता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि विभिन्न धर्मविज्ञानियों ने विभिन्न तरीकों से इस तार्किक तनाव का समाधान करने का प्रयास किया है।

कुछ मसीही परंपराओं का झुकाव नियतिवाद की ओर है। वे परमेश्वर की सर्वश्रेष्ठता पर इतना जोर देती हैं कि उसकी सर्वव्यापकता बहुत सीमित हो जाती है। उदाहरण के लिए, कुछ मसीही इस तरह से बात करते हैं। “क्योंकि परमेश्वर समय और स्थान से बहुत ऊपर है, इसलिए वह वास्तव में प्रार्थना का उत्तर नहीं देता।” दूसरे शब्दों में, ये मसीही मानते हैं कि परमेश्वर ऐतिहासिक घटनाओं के प्रति उदासीन है— और इसलिए वह वास्तव में प्रार्थना या अन्य किसी बात के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता।

उदार ईश्वरवाद के रूपों का अनुसरण करने वाले अन्य मसीही समूहों ने सर्वव्यापकता पर यहाँ तक जोर देने के द्वारा सर्वश्रेष्ठता और सर्वव्यापकता के बीच के तार्किक तनाव का समाधान करने का प्रयास किया है कि परमेश्वर को अब वास्तव में सर्वश्रेष्ठ नहीं समझा जाता। शायद आपने कुछ मसीहियों को ऐसे बात करते हुए सुना होगा। “क्योंकि परमेश्वर प्रार्थना का उत्तर देता है, इसलिए वह अवश्य ही हमारी तरह स्थान और समय में सीमित होगा।”

अब यह समझना कठिन नहीं है कि मसीही इन दिशाओं में क्यों जाते होंगे। पूर्ण सर्वश्रेष्ठता और पूर्ण सर्वव्यापकता विरोधाभासी प्रतीत होती है। और इस तनाव का समाधान करने का एक तरीका किसी एक की पुष्टि इतने बल के साथ करना है कि हम लगभग दूसरे को अस्वीकार ही कर दें।

परंतु यहाँ यह निश्चित है कि हमें याद रखना चाहिए कि पवित्रशास्त्र ही हमारा सर्वोच्च अधिकार है। हम चाहे जितना भी क्यों न सोचें, पवित्रशास्त्र में बहुत ही मजबूत प्रमाण है कि परमेश्वर सर्वश्रेष्ठ और सर्वव्यापी दोनों है। प्रार्थना के संबंध में, पवित्रशास्त्र से एक मजबूत विषय की रचना की जा सकती है कि परमेश्वर पूर्ण रूप से ऐसी घटनाओं से ऊपर है। परंतु पवित्रशास्त्र से एक इस मजबूत विषय की रचना भी की जा सकती है कि परमेश्वर प्रार्थना को सुनता और उनका उत्तर देता है। हमारे सीमित मनों के लिए जिस तार्कित तनाव की रचना यह करता है, उसके बावजूद भी हमें इन दोनों को सच्चाई के रूप में स्वीकार करना चाहिए। और यदि हम इस तरह के विचारों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं, तो हमें इस असमर्थता का कारण हमारी अपनी को सीमितता मानना चाहिए।

इसलिए, जब हम यह खोजते हैं कि विधिवत धर्मविज्ञानी अपने धर्मशिक्षा-संबंधी दृष्टिकोणों के लिए तार्किक समर्थन पाने का प्रयास करते हैं, तो हमें एक ओर यह मान लेना चाहिए कि विधिवत प्रक्रियाओं के लिए तर्क एक बहुत ही महत्वपूर्ण योग्यता है। दूसरी ओर, यदि बाइबल की सावधानीपूर्ण व्याख्या स्पष्ट करती है कि कहीं-कहीं पवित्रशास्त्र तार्किक विश्लेषण से परे होता है, इसलिए हमें यह याद रखना चाहिए कि हमारा तर्क बहुत ही सीमित है। बाइबल का अधिकार सदैव तर्क के अधिकार से बड़ा होता है।

विधिवत प्रक्रियाओं में सीमित अधिकार को स्मरण रखना जितना महत्वपूर्ण है, उसके साथ-साथ यह देखना भी महत्वपूर्ण है कि तर्क विधिवत धर्मविज्ञानियों को बाइबल के अनुच्छेदों से बहुत से अर्थों को निकालने के योग्य बनाता है।

निगमनात्मक अर्थ

जब विधिवत धर्मविज्ञानी पवित्रशास्त्र के साथ कार्य करते हैं तो उनकी रूचि केवल बाइबल की स्पष्ट शिक्षाओं को दर्शाने की ही नहीं होती। उनकी रूचि अप्रत्यक्ष शिक्षाओं में से बातों को निकालने में भी होती है।

बाइबल स्पष्ट और साफ साफ कई विषयों को संबोधित करती है। परंतु इसके साथ-साथ, यह प्रत्येक शिक्षा के प्रत्येक पहलू को स्पष्टता से संबोधित नहीं करती। फलस्वरूप, जब विधिवत धर्मविज्ञानी पवित्रशास्त्र के साथ कार्य करते हैं तो वे अक्सर पवित्रशास्त्र की स्पष्ट शिक्षाओं में पाए जाने वाले खाली स्थान को भरने की आवश्यकता का सामना करते हैं। और वे पवित्रशास्त्र की स्पष्ट शिक्षाओं की आधारभूत संभावनाओं को एकत्र करने की आवश्यकता का सामना भी करते हैं। विधिवत धर्मविज्ञान में तर्क का सबसे बड़ा महत्व वह क्षमता है जिसके द्वारा यह हमें पवित्रशास्त्र की प्रत्यक्ष शिक्षाओं को निगमनात्मक तर्क के द्वारा समझाता है।

शब्द "निगमनात्मक तर्क" तार्किक विचार-विमर्श की रचना को दर्शाता है जिसे निम्न तरीके से परिभाषित किया जा सकता है :

> निगमन आधार से आवश्यक निष्कर्षों की ओर जाने का तर्क वितर्क करने का एक तरीका है।

हम निगमनात्मक तर्क वितर्क के निष्कर्षों को इसलिए "आवश्यक" कहते हैं क्योंकि वे बिना किसी प्रश्न के तब तक सत्य हैं जब तक उनके आधार-वाक्य सत्य होते हैं। हम एक तर्क के आधार-वाक्य में निहित अप्रत्यक्ष विचारों को ऐसे ही ले लेते हैं, और निष्कर्ष में उन्हें स्पष्ट बना देते हैं। विधिवत धर्मविज्ञान के विषय में, एक बार जब विधिवत धर्मविज्ञानी उन निहितार्थ परिणामों को निकाल लेते हैं, जिनकी पवित्रशास्त्र इस या उस आधार-वाक्य के रूप में शिक्षा देता है, तो वे पवित्रशास्त्र में से कई आवश्यक अर्थों को एकत्र कर सकते हैं।

इस साधारण उदाहरण को देखें — हम पवित्रशास्त्र में इस आधार-वाक्य को पाते हैं : "यदि कोई व्यक्ति यीशु में विश्वास करता है, तो वह व्यक्ति उद्धार पाएगा।" तब हम पवित्रशास्त्र में यह आधार-वाक्य पाते हैं : "यूहन्ना बपतिस्मादाता ने मसीह में विश्वास किया।" यदि ये दोनों आधार-वाक्य सत्य हैं, तब यह निष्कर्ष निकालना तार्किक रूप से आवश्यक है कि "यूहन्ना बपतिस्मादाता उद्धार पाएगा।" यह निष्कर्ष निकालने का अर्थ पवित्रशास्त्र की किसी शिक्षा के साथ कुछ जोड़ना नहीं है। यह तो जो पहले से निहित है उसे स्पष्टता से कहना मात्र है।

इस दूसरे उदाहरण पर ध्यान दें — मान लें कि विधिवत धर्मविज्ञानी यह दावा करते हैं कि पवित्रशास्त्र यह तर्क-वाक्य सिखाता है : "यदि मसीह जी उठा है, तो वह प्रभु है।" दूसरे शब्दों में, पवित्रशास्त्र यह सिखाता है कि मसीह का जी उठना एक पर्याप्त प्रमाण है कि वह प्रभु है। इस तर्क-वाक्य को बाइबल के कई अनुच्छेदों की अच्छी व्याख्या के द्वारा स्थापित किया जा सकता है। दूसरा, मान लें कि विधिवत धर्मविज्ञानी पवित्रशास्त्र में यह देखते हैं कि : "मसीह जी उठा है।" इस तर्क-वाक्य को भी कई अनुच्छेदों का उल्लेख करते हुए स्थापित किया जा सकता है। परंतु इन दो स्थापित तर्क-वाक्यों के साथ विधिवत धर्मविज्ञानी एक निष्कर्ष की ओर बढ़ सकते हैं : "अतः, मसीह प्रभु है।" आधार-वाक्य एक : यदि मसीह जी उठा है, तो वह प्रभु है। आधार-वाक्य दो : मसीह जी उठा है। निष्कर्ष : "अतः, मसीह प्रभु है।" इस न्यायवाक्य का निष्कर्ष तार्किक रूप से निश्चित है। जब तक निगमनात्मक तर्कों के आधार-वाक्य निश्चित हैं, तो निष्कर्ष भी निश्चित है।

अब, वास्तविक धर्मवैज्ञानिक विचार-विमर्श में, निगमनात्मक तर्क कभी-कभी ही स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किए जाते हैं। जो कुछ कहा गया है वे उसके धरातल के नीचे पाए जाते हैं, क्योंकि धर्मविज्ञानी अक्सर अनुमान लगाते हैं कि उनके तर्क इतने ज्यादा स्पष्ट हैं कि उन्हें स्पष्ट किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए, एक विधिवत धर्मविज्ञानी के लिए यूहन्ना 14:6 का उल्लेख करने के द्वारा एक आधार-वाक्य की रचना करना बहुत ही सामान्य सी बात होगी, जहाँ यीशु ने इन शब्दों को कहा :

> "बिना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुँच सकता।" (यूहन्ना 14:6)।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

और फिर वे इस पद के आधार पर यह निष्कर्ष निकाल सकते थे कि, "मसीह में विश्वास ही उद्धार का एकमात्र मार्ग है।"

अधिकांश विषयों में, एक विधिवत धर्मविज्ञानी इस बात का अनुमान लगाने में सही होगा कि तर्क का यह सार पूर्ण रूप से पर्याप्त है। परंतु हमें यह अनुभव होना चाहिए कि तर्क वास्तव में अधिक जटिल है, और कि कभी-कभी इन जटिलताओं को व्यक्त किए जाने की आवश्यकता है।

वास्तविक विधिवत धर्मविज्ञान में, धर्मविज्ञानी केवल उन्हीं आधार-वाक्यों को प्रस्तुत करते हैं जो वे मानते हैं कि उनकी मान्यताओं के लिए सबसे अधिक सहायक और महत्वपूर्ण समर्थन प्रदान करते हैं। कई बार निगमन को छोटा करना पड़ता है क्योंकि अनुमान बहुत ज्यादा लगा लिया जाता है, परंतु अन्य समयों पर निगमनों को बहुत विवरणों के साथ कहा जाता है।

सब संदर्भों में, बाइबल की शिक्षाओं के तार्किक अर्थों को एकत्र करना एक मुख्य तरीका है जिसके द्वारा विधिवत धर्मविज्ञानी धर्मवैज्ञानिक धर्मशिक्षाओं का निर्माण करते हैं। जब वे परतों और बाइबल की जानकारी की परतों को संकलित करते हैं, तो उस प्रक्रिया का मुख्य भाग उन अर्थों को एकत्र करना होता है जिन्हें उन्होंने पवित्रशास्त्र में पाया है।

जैसा कि हम देख चुके हैं, विधिवत धर्मविज्ञानी निगमनात्मक तर्क को लागू करते हैं जब वे धर्मशिक्षाओं की रचना करते हैं। और जब उनके आधार-वाक्य सही होते हैं, तो उनके निगमनात्मक निष्कर्ष भी पूर्णतः निश्चित होते हैं। परंतु किसी न किसी स्तर पर, विधिवत धर्मविज्ञानी विवेचनात्मक तर्क को भी लागू करते हैं। और प्रश्न जिसका सामना हम इस बिंदु पर करते हैं वह यह है : विवेचनात्मक तर्क किस प्रकार की तार्किक निश्चितता विधिवत धर्मविज्ञान में लेकर आता है?

विवेचनात्मक निश्चितता

यद्यपि विवेचनात्मक तर्क को कई तरीकों से परिभाषित किया जा सकता है, फिर भी इसे निम्न तरीके से परिभाषित करना हमारे लिए पर्याप्त होगा :

> विवेचनात्मक तर्क विशेष तथ्यों से संभावित निष्कर्षों की ओर तर्क करने का एक तरीका है।

विधिवत धर्मविज्ञान के विषय में, प्राथमिक तथ्य जो ध्यान में आते हैं वे पवित्रशास्त्र के तथ्य हैं – कैसे पवित्रशास्त्र यह या वह सिखाता है। और बाइबल के इन विशेष तथ्यों से विधिवत धर्मविज्ञानी संभावित निष्कर्षों को प्राप्त करते हैं।

यह जानने के लिए कि विधिवत धर्मविज्ञान में विवेचना कैसे कार्य करती है, हम तीन विषयों पर ध्यान देंगे : पहला, विवेचना के प्रकार; दूसरा विवेचनात्मक खाई; और तीसरा, विधिवत धर्मविज्ञान के लिए विवेचना के अर्थ। आइए, सबसे पहले विवेचना के प्रकारों को देखें।

प्रकार। कई तरह से, विवेचना उन दो तरीकों से आगे बढ़ती है जिन्हें हम पहले ही देख चुके हैं। एक ओर, हम दोहराती हुई विवेचना के बारे में बात कर सकते हैं, वे समय जब हम विशेष तथ्यों से ऐसे निष्कर्षों को प्राप्त कर सकते हैं जो बार-बार एक ही जैसे सत्य को दोहराते हैं। दूसरी ओर, हम संयोजित विवेचना के बारे में बात कर सकते हैं, वे समय जब हम ऐसे विशेष तथ्यों से निष्कर्षों को प्राप्त कर सकते हैं जो मिश्रित सत्यों की रचना के लिए एक साथ आते हैं।

बाइबल के बाहर से दोहराती हुई विवेचना के इस उदाहरण के बारे में सोचें। कल्पना करें कि मैं एक हंस को देख रहा हूँ और वह सफेद है, फिर मैं एक अन्य हंस को देखता हूँ और वह सफेद है, एक और हंस को और वह सफेद है और फिर एक और हंस को और वह सफेद है। लाखों बार इस अनुभव को

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

पा लेने के बाद, मैं सामान्य रूप से यह निष्कर्ष निकालने में संतुष्टि महसूस करूँगा, “सभी हंस सफेद होते हैं।”

अब संयोजित विवेचना के इस उदाहरण के बारे में सोचें, ऐसे समय जब हम विशेष तथ्यों से एक मिश्रित निष्कर्ष के लिए तर्क करते हैं। हम अपने प्रतिदिन के जीवन में हर समय यह करते रहते हैं। कल्पना करें कि मैं अपने घर तक पैदल चल कर जाता हूँ और देखता हूँ कि दरवाजा आधा खुला हुआ है। इसके बाद मैं इसमें देखता हूँ और पाता हूँ कि फर्नीचर इधर उधर फैला हुआ है। मैं और आगे जाकर देखता हूँ और पाता हूँ कि एक अजनबी पिछले दरवाजे से मेरा टेलीविजन लेकर जा रहा है। मैं क्या निष्कर्ष निकालूँगा? पूरी संभावना है कि मैं इस सारी जानकारी को एकत्रित करूँगा और आश्वस्त महसूस करूँगा कि “मुझे लूटा जा रहा है।” यह संयोजित विवेचना का एक रूप है, अर्थात् सभी तरह की जानकारी को एक मिश्रित निष्कर्ष में एकत्र करना।

जब विधिवत धर्मविज्ञानी पवित्रशास्त्र के साथ कार्य करते हैं, तो वे दोनों तरह की विवेचनाओं को काम में लाते हैं। एक ओर, वे दोहारती हुई विवेचना के साथ कार्य करते हैं, जहाँ वे बाइबल में एक जैसे विषय को इस बिन्दु तक बार-बार दोहराया हुआ पाते हैं कि यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि कुछ हमेशा सत्य होता है। दूसरी ओर, वे संयोजित विवेचना की रचना करते हैं, जहाँ वे बाइबल में इस तथ्य और उस तथ्य को पाते हैं जो मिश्रित निष्कर्षों की रचना करता है। दोनों तरह की विवेचनाएँ विधिवत धर्मविज्ञान की प्रक्रियाओं में आवश्यक हैं।

विवेचना की इन दो प्रक्रियाओं को मन में रखते हुए, आइए विवेचनात्मक तर्क में दूसरे महत्वपूर्ण पहलू के रूप में विवेचनात्मक खाई की ओर मुड़ें।

विवेचनात्मक खाई। यह अनुभव करना महत्वपूर्ण है कि विवेचनात्मक तर्कों में निष्कर्ष अक्सर ऐसी जानकारी को जोड़ते हैं जो आधार-वाक्यों में निहित नहीं होती। वे अक्सर आधार-वाक्यों से परे जाते हैं। परिणामस्वरूप, जो हम देखते हैं और जो हम निष्कर्ष निकालते हैं उसके बीच कुछ दूरी पाई जाती है। तर्कवादी अक्सर एक विवेचनात्मक तर्क में हम जो जानते हैं और हम जो निष्कर्ष निकालते हैं उसके बीच की दूरी को दर्शाने के लिए इस वाक्यांश “विवेचनात्मक खाई” का प्रयोग करते हैं।

उन उदाहरणों के बारे में सोचें जिनका हमने अभी अभी उल्लेख किया है। पहला, दोहाराती हुई विवेचना का उदाहरण। यदि हम एक हंस को देखें और कहें कि, “हंस सफेद है।” और तब हम एक और को देखें और कहें, “यह सफेद है।” और हम लाखों बार ऐसा ही करें, तो हम यह बड़े साहस के साथ यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सभी हंस सफेद होते हैं। परंतु दस लाख हंसों के सफेद होने के विषय में जानने और यह दावा करने कि सभी हंस सफेद होते हैं, के बीच में बड़ा अंतर है। यह निष्कर्ष कि सारे हंस सफेद होते हैं, बहुत संभावित हो सकता है, परंतु यह पूरी तरह निश्चित नहीं है। हमारे अवलोकन और निष्कर्ष के बीच विवेचनात्मक खाई है।

अतः, क्या हमें यह निष्कर्ष निकालने की अनुमति देता है कि सभी हंस सफेद होते हैं जब हम यह जानते हैं कि जो कुछ हमने अवलोकन किया है यह उससे परे की बात है? सारांश में, हम उनसे निष्कर्ष निकालते हैं जिन बातों को हम जानते हैं। हम बहुत से अन्य अनुभवों से और सामान्य ज्ञान, अर्थात् जो हमारे सामान्य दृष्टिकोण को अर्थ देता है, उससे निष्कर्ष निकालते हैं। हम स्वयं से कहते हैं, “दस लाख हंसों को देखना मेरी बात को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है।”

कुछ इसी तरह की बात संयोजित विवेचना पर भी लागू होती है। याद है कि कैसे मैंने निष्कर्ष निकाला था कि मेरे घर को लूटा जा रहा था? मैंने खुला दरवाजा, बिखरा फर्नीचर, और एक व्यक्ति को टेलीविजन उठा कर ले जाते हुए देखा। इस अवलोकन ने मुझे एक तर्कसंगत या संभावित निष्कर्ष निकालने को प्रेरित किया कि मुझे लूटा जा रहा था। परंतु यह निष्कर्ष पूरी तरह से निश्चित नहीं था। यह तो संभावना मात्र थी। आखिरकार, वह व्यक्ति शायद टेलीविजन की मरम्मत करने वाला रहा होगा। वह

शायद गलत घर में आ गया होगा। कई और बातें शायद ये दिखाएँ कि मेरा निष्कर्ष गलत था। एक बार फिर से हम विवेचनात्मक खाई का सामना करते हैं।

तब फिर किस बात ने मुझे यह निष्कर्ष निकालने के योग्य बनाया कि मुझे लूटा जा रहा था? किसने मुझे विवेचनात्मक खाई को पाटने में सक्षम किया? मैंने बस अतीत के अनुभव और सामान्य सांस्कृतिक प्रभावों से अनुमान लगाया कि कोई मेरे घर में उन कार्यों को नहीं कर रहा होता यदि वह मुझे लूट नहीं रहा होता।

विवेचनात्मक खाई को स्मरण रखना बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि जब विधिवत धर्मविज्ञानी अपने धर्मशिक्षाओं का निर्माण करते हैं, तो उन्हें विवेचनात्मक खाई की सीमाओं का सामना करना पड़ता है। जब वे पवित्रशास्त्र और पवित्रशास्त्र से लिए गए धर्मवैज्ञानिक तर्क-वाक्यों को बीनते हैं, तो विधिवत धर्मविज्ञानी बड़ी गहनता के साथ विवेचनात्मक तर्क में सम्मिलित हो जाते हैं। और जैसा कि हमने देखा है, इसका अर्थ है कि उनके निष्कर्ष पूरी तरह से निश्चित नहीं होते। वे काफी संभावित या फिर निर्धारित निर्णय हो सकते हैं, परंतु प्रत्येक विवरण में पूरी तरह से निश्चित नहीं होते क्योंकि वे विवेचना पर आधारित होते हैं। किसी न किसी सीमा तक, विधिवत धर्मविज्ञानी सदैव विवेचनात्मक खाई का सामना करते हैं।

दुर्भाग्य से, विधिवत धर्मविज्ञानी कई बार यह भूल जाते हैं कि उनके धर्मशिक्षा-संबंधी निष्कर्ष विवेचना पर आधारित हैं और यह कि वे विवेचनात्मक खाई का सामना करते हैं। इसलिए, वे अक्सर ऐसे दावों को करते हैं जो उनके द्वारा प्रमाणित बातों से परे चले जाते हैं। एक बार फिर से बेर्खोफ़ द्वारा रचित पुस्तक सिस्टेमेटिक थियोलोजी के भाग 4, खंड 10 में पाए जाने वाले उदाहरण, "ओब्जेक्शन टू दी थ्योरी ऑफ़ परफेक्शनिज्म" पर ध्यान दें। अपने विचार विमर्श में किसी एक स्थान पर बेर्खोफ़ बाइबल में से कई पवित्र लोगों का उल्लेख करता है। अय्यूब 9:3 और 20 में अय्यूब का; भजन संहिता 32:5, 130:3 और 143:2 में भजनकार का; और नीतिवचन 20:9 में बुद्धिमान का; यशायाह 64:6 में यशायाह का; दानिय्येल 9:16 में दानिय्येल का; और रोमियों 7:14 में पौलुस का। इन उदाहरणों के आधार पर बेर्खोफ़ ने यह सार निकाला कि :

> बाइबल के पवित्र लोगों को [पवित्रशास्त्र में] निरंतर अपने पापों का अंगीकार करते हुए प्रस्तुत किया गया है।

अब, चाहे हम कितना भी मानें कि यह निष्कर्ष सच्चा है (और मैं सोचता हूँ कि अन्य बातें भी दिखाती हैं कि इसकी संभावना बहुत अधिक है), फिर भी बेर्खोफ़ का निष्कर्ष विवेचनात्मक खाई की समस्या का सामना करता है। बेर्खोफ़ ने प्रस्तुत किए गए प्रमाण के बारे में कुछ ज्यादा ही कह दिया था जब उसने यह निष्कर्ष निकाला कि पवित्र लोगों को निरंतर उनके पापों का अंगीकार करते हुए प्रस्तुत किया गया है। उसने ऐसा केवल नौ बार ही होते हुए दिखाया था। नौ उदाहरण यह प्रमाणित नहीं कर सकते कि बाइबल निरंतर पवित्र लोगों को उनके पापों को अंगीकार करती हुई प्रस्तुत करती है। इन दावे को अप्रमाणित करने के लिए बाइबल के विश्वासी का केवल एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा जिसने इस तरह से संघर्ष नहीं किया। पूर्ण रूप से एकमात्र निश्चित निष्कर्ष निकालना, यह अनुमान लगाते हुए कि बेर्खोफ़ ने प्रत्येक अनुच्छेद की सही व्याख्या की है, यह है : "बाइबल के पवित्र लोगों को [पवित्रशास्त्र में] कई बार उनके पापों का अंगीकार करते हुए प्रस्तुत किया गया है।"

फिर बेर्खोफ़ ने इस तरह के निष्कर्ष को निकालने में सहज महसूस क्यों किया कि "पवित्र लोगों को निरंतर अंगीकार करते हुए प्रस्तुत किया गया है"? उसने अपने बड़े निष्कर्ष के प्रति अपने सीमित प्रमाण से विवेचनात्मक खाई को कैसे पार किया? उत्तर सरल है : उसने विवेचनात्मक खाई को वैसे ही पार किया जैसे हम सामान्य जीवन में करते हैं, उसके विस्तृत मसीही दृष्टिकोण से मिली जानकारी के साथ। वह अपने निष्कर्ष से संतुष्ट था क्योंकि यह उन बहुत सी बातों के सामंजस्यता में था जिन पर वह विश्वास करता था और उन बातों के साथ भी जिन पर उसने सोचा कि उसके पाठक भी विश्वास करेंगे।

परंतु हम सब को यह पहचानना चाहिए कि उसका निष्कर्ष उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रमाण से बहुत परे चला गया था।

अब हम विवेचनात्मक निश्चयता के संबंध में एक तीसरे विषय की ओर मुड़ने के लिए तैयार हैं। विवेचनात्मक प्रक्रियाओं के वे अर्थ क्या हैं जो विधिवत धर्मविज्ञान में धर्मशिक्षाओं के लिए अत्यावश्यक हैं?

अर्थ। जो कुछ हमने देखा उसमें से कम से कम दो बातें सीख सकते हैं : पहली, हमें विवेचनात्मक खाई को कम करने की आवश्यकता है और दूसरा, हमें विवेचनात्मक खाई को याद रखने की आवश्यकता है।

सबसे पहले, यह प्रत्येक विश्वासी का उत्तरदायित्व है कि वह जितना हो सके उतना विवेचनात्मक खाई को कम करने के लिए कठिन परिश्रम करे ताकि हम अपने निष्कर्षों में अधिक से अधिक निश्चितता प्राप्त कर सकें। जब हम विधिवत धर्मविज्ञान में धर्मवैज्ञानिक विचार-विमर्शों के माध्यम से आगे बढ़ते हैं, तो अक्सर ऐसा होता है कि हमें एक दृष्टिकोण के लिए एक विषय को जितना हो सके उतना मजबूत बनाने की आवश्यकता होती है। ऐसा करने के लिए, हमें अपने प्रमाण और अपने निष्कर्षों के बीच दूरी को कम करने की आवश्यकता होती है।

ऐसा करने का एक तरीका बाइबल के ऐसे और अधिक प्रमाण एकत्रित करना है जो उसी निष्कर्ष को दर्शाता हो। जितना अधिक प्रमाण होगा, संभावना उतनी ही अधिक होगी कि हमारा निष्कर्ष सच्चा है। उदाहरण के लिए, बेर्खोफ़ का निष्कर्ष कि “बाइबल के पवित्र लोगों को [पवित्रशास्त्र में] उनके पापों का अंगीकार करते हुए प्रस्तुत किया गया है” एक बड़ी खाई को दर्शाता है क्योंकि उसने केवल नौ उदाहरणों को ही उद्धृत किया था। परंतु यदि उसने सौ उदाहरणों को उद्धृत किया होता, तो उसका निष्कर्ष और मजबूत होता। यदि उसने 1000 उदाहरणों को दिखाने का समय निकाला होता, तो उसका निष्कर्ष और भी अधिक निश्चित होता, भले ही यह जरुरत से ज्यादा होता। अब इतने सारे उदाहरण ढूँढना शायद व्यवहारिक न हो परंतु इससे उसका निष्कर्ष तार्किक रूप में काफी निश्चित और मजबूत होता।

जब हम स्वयं को धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्शों में विवेचनात्मक तर्कों के साथ सम्मिलित करते हैं, तो स्वंय और अन्यों से पूछना हमेशा महत्वपूर्ण होता है : क्या किसी दृष्टिकोण की संभावना को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त मात्रा में प्रमाण लाए गए हैं? अक्सर हम यह पाएँगे कि विवेचनात्मक खाई को कम करने के लिए और अधिक विवेचनात्मक प्रमाण की आवश्यकता होती है।

जो कुछ हमने देखा है उसका एक दूसरा व्यवहारिक अर्थ यह है : हमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि हम पूर्ण रूप से विवेचनात्मक खाई से बच नहीं सकते। परिणामस्वरूप, अक्सर यह स्वीकार करना बुद्धिमानी होगी कि कुछ धर्मवैज्ञानिक निष्कर्ष या तो ज्यादा या फिर अन्यों की तुलना में कम निश्चित होते हैं।

जैसा कि हमने अन्य अध्यायों में देखा है, धर्मशिक्षा-संबंधी निष्कर्षों को निश्चितता के शंकु के संदर्भ सोचना सहायक होता है। कुछ मान्यताएँ ऐसी हैं जिन्हें हम बहुत भरोसे के साथ रखते हैं, और यह शंकु के शिखर पर होती हैं। अन्य मान्यताओं के संबंध में हमारे पास कम निश्चितता है, और इसलिए हम इन्हें शंकु के निचले हिस्से में रखते हैं। अंततः, ऐसी कई मान्यताएँ हैं जिन्हें हम थोड़ी सी निश्चितता के साथ रखते हैं, और यह शंकु के सबसे निचले स्थान पर रहती हैं। जब हम अपने विवेचनात्मक निष्कर्षों की निश्चितता के बारे में सोचते हैं, तो यह उन पर इस नमूने के अनुरूप ध्यान देने में सहायता करता है।

विशेषकर, हम कुछ मान्यताओं के विषय में अधिक आश्वस्त हो सकते हैं क्योंकि विवेचनात्मक प्रमाण मजबूत है और विवेचनात्मक खाई अपेक्षाकृत छोटी है। इसलिए, ये मान्यताएँ शंकु के शिखर तक उठ खड़ी होती हैं। ये धर्मशिक्षाएँ हमारी विश्वास-प्रणाली में स्थापित निर्णय बन जाती हैं। परंतु अन्य मान्यताओं के लिए विवेचनात्मक प्रमाण अधिक मजबूत नहीं होते, जिसके कारण, विवेचनात्मक खाई

बहुत बड़ी हो जाती है, और हमें उनके विषय में कम तार्किक निश्चितता ही प्राप्त होती है। परिणामस्वरूप, यह अनुभव करना बहुत ही सहायक है कि विधिवत धर्मविज्ञान में धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श अक्सर यहाँ तक आ जाता है कौनसा दृष्टिकोण बाइबल-आधारित दृष्टिकोण है, कौनसा दृष्टिकोण बाइबल की अपनी प्रस्तुति में अधिक व्यापक है।

उदाहरण के लिए, युगांतविज्ञान में हम पवित्रशास्त्र की शिक्षाओं से काफी आश्वस्त हो सकते हैं कि यीशु अपनी महिमा में पुन: लौटेगा। इस मान्यता का विवेचनात्मक प्रमाण इतना मजबूत है कि इस पर कोई संदेह नहीं होना चाहिए। यह निश्चितता के हमारे शंकु के शिखर पर होना चाहिए। परंतु इस विशेष दृश्य के लिए प्रमाण बहुत कमजोर हैं जिसे मसीहियों ने इस संबंध में विकसित कर लिया है जब वे यह चर्चा करते हैं कि यीशु कब और कैसे लौटेगा। अतः, ये निष्कर्ष निश्चितता के हमारे शंकु के निचले स्तर पर होने चाहिए। हम बड़े विश्वास के साथ मसीह के पुन: आगमन की पुष्टि कर सकते हैं और हमें करनी चाहिए। परंतु हम विवेचना के प्रमाण से बहुत दूर चले जाते हैं जब हम उसके आगमन के अनेक छोटे-छोटे वर्णनों के विषय में बहुत जिद्दी बन जाते हैं।

अपने और अन्यों के समक्ष यह स्वीकार करने में कोई बुराई नहीं है कि हमारे पास उन सब बातों के लिए संपूर्ण निर्णायक प्रमाण नहीं हैं जिन पर हम विश्वास करते हैं। अक्सर, जिस चुनौती को हमें अपने और अन्यों के सामने रखनी चाहिए वह ऐसी नहीं होनी चाहिए, “यही एकमात्र तरीका है जिसमें इस धर्मशिक्षा को समझा जा सकता है।” इसकी अपेक्षा, अक्सर यह कहना बेहतर होता है, “धर्मशिक्षा को इस तरह से समझना शायद दूसरे तरीकों से अधिक अच्छा है।” तब हम विशेष दृष्टिकोणों के प्रमाणों को जाँचने के द्वारा सह-विश्वासियों को लाभकारी तरीके से सम्मिलित कर सकते हैं।

सारांश में, विधिवत धर्मविज्ञान में होने वाले धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्शों में तर्क बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। जब हम बाइबल की शिक्षाओं को संकलित करते हैं, तो हमें पवित्रशास्त्र की अधीनता में तर्क का प्रयोग करना चाहिए। जब हम धर्मवैज्ञानिक धर्मशिक्षाओं पर विचार-विमर्श करते हैं, तो हमें उन विषयों के लिए पवित्रशास्त्र के अर्थों को एकत्र करने के लिए तैयार रहना चाहिए जिनको हम संबोधित कर रहे हैं। परंतु अंत में, धर्मवैज्ञानिक धर्मशिक्षाओं का विवेचनात्मक आधार हमें यह स्मरण दिलाना चाहिए कि किसी भी धर्मशिक्षा की मानवीय रचना संपूर्ण नहीं है। जिन बातों पर हम विश्वास करते हैं अभी भी उनमें सुधार करने के कई तरीके हैं।

अब जबकि हमारे पास विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षाओं का एक सामान्य दिशा-निर्धारण है और इसका भी कि धर्मशिक्षाओं की रचना कैसे होती है, इसलिए हमें अपने तीसरे विषय को देखना चाहिए : विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षा के मूल्य और खतरे।

मूल्य और खतरे

जब हम धर्मवैज्ञानिक धर्मशिक्षाओं के मूल्यों और खतरों की खोज करते हैं, तो हम मसीही धर्मविज्ञान के निर्माण के लिए तीन मुख्य स्रोतों पर धर्मशिक्षाओं के प्रभावों को देखने के द्वारा उसी पद्धति का अनुसरण करेंगे जिसे हमने पिछले अध्यायों में देखा है।

आपको स्मरण होगा कि मसीहियों को धर्मविज्ञान का निर्माण परमेश्वर के सामान्य और विशेष प्रकाशन से करना है। हम विशेष प्रकाशन के ज्ञान को मुख्य रूप से पवित्रशास्त्र की व्याख्या के द्वारा प्राप्त करते हैं, और हम समुदाय में सहभागिता (दूसरों से सीखना, विशेषकर अन्य मसीहियों से) पर ध्यान केंद्रित करने और मसीही जीवन (मसीह के लिए जीने के हमारे व्यक्तिगत अनुभव) पर ध्यान केंद्रित करने के द्वारा सामान्य प्रकाशन के महत्वपूर्ण आयामों को प्राप्त करते हैं।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

क्योंकि ये स्रोत अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, इसलिए हम प्रत्येक के संदर्भ में विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मवैज्ञानिक विचार-विमर्शों के मूल्यों और खतरों की खोज करेंगे। हम पहले धर्मशिक्षाओं और मसीही जीवन को देखेंगे; दूसरा, हम समुदाय में सहभागिता के संबंध में धर्मशिक्षाओं की खोज करेंगे; और तीसरा हम पवित्रशास्त्र की व्याख्या के संबंध में उनकी जाँच करेंगे। आइए, सबसे पहले हम मसीही जीवन के धर्मवैज्ञानिक स्रोत को देखें।

मसीही जीवन

जैसा कि हम देख चुके हैं, मसीही जीवन व्यक्तिगत पवित्रीकरण की प्रक्रिया के समतुल्य है, और यह वैचारिक, व्यवहारिक और भावनात्मक स्तरों पर होता है। या जैसा कि हमने इसे दर्शाया है : सही विचार (ओर्थोडोक्सी), सही आचरण (ओर्थोप्राक्सिस) और करूणाभाव (ओर्थोपाथोस) के स्तरों पर।

समय हमें अनुमति नहीं देगा कि हम उन सभी तरीकों की खोज करें जिनमें धर्मशिक्षा पवित्रीकरण को प्रभावित करती है। इसलिए, हम उस एक-एक मुख्य तरीके तक ही सीमित रहेंगे जिसमें वे मसीही जीवन का विकास कर सकती हैं और रूकावट बन सकती हैं। आइए, पहले उस एक तरीके को देखें जिसमें धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श मसीह के लिए जीने के हमारे प्रयासों में वृद्धि कर सकते हैं।

वृद्धि

पारंपरिक धर्मवैज्ञानिक धर्मशिक्षाओं का सबसे बड़ा लाभ यह है कि वे हमें अपने विश्वास के बारे में एक बड़े पैमाने पर तार्किक रूप से सोचने में सहायता करती हैं। जैसा कि हम देख चुके हैं, धर्मशिक्षाओं का निर्माण बाइबल के कई अनुच्छेदों को एक साथ तार्किक आधार संकलित करने और उनकी व्याख्या करने के द्वारा किया जाता है। दुर्भाग्य से, कई मसीही यह नहीं जानते हैं कि अपने विश्वास के बारे में तार्किक रूप से कैसे सोचा जाए। वास्तव में, कई बार, अच्छे मसीही भी इस विचार को ठुकरा देते हैं कि उन्हें अपने द्वारा विश्वास की जाने वाली कई बातों के बारे में तार्किक संबंध के द्वारा सोचना चाहिए। उन कई बातों में जिन पर वे विश्वास करते हैं आपसी सम्पर्कों को तार्किक रूप से सोचना चाहिए। इसकी अपेक्षा, वे अपने निर्णयों को बाइबल के एक या दो विचारों पर ही आधारित करना पसंद करते हैं।

मुझे याद है कि एक बार मेरी बातचीत एक युवक से हुई जो इस बात से आश्वस्त था कि उसे सरकार को कर अदा नहीं करना चाहिए। उसने 1 कुरिन्थियों 10:31 का उल्लेख किया और कहा, “मुझे सब कुछ परमेश्वर की महिमा के लिए करना चाहिए। और मैं नहीं सोचता कि कर अदा करना परमेश्वर की महिमा करना है। निसंदेह, मुझे कम से कम उसके द्वारा कही गई बात के एक हिस्से से तो सहमत होना ही पड़ा। यह सच है कि हमें सब कुछ परमेश्वर की महिमा के लिए करना है। परंतु जिस अर्थ को उसने इसमें से निकाला था वह बाइबल की बहुत ही कम जानकारी पर आधारित था; यह बाइबल की अन्य अनेक प्रासंगिक शिक्षाओं द्वारा अगुवाई प्राप्त नहीं था।

इस युवक के तर्क में क्या गलत था? वह पवित्रशास्त्र के एक मूल सिद्धांत को भूल गया था जिसे हमें सदैव स्मरण रखने की आवश्यकता है। मैं इसे अक्सर ऐसे लिखता हूँ :

“आप सब कुछ एक साथ एक बार में नहीं कह सकते। यहाँ तक परमेश्वर भी नहीं कह सकता जब वह हममे बात कर रहा होता है।”

हम जानते हैं कि प्रतिदिन के जीवन में यह सच है। हम कभी भी किसी ऐसे विषय के बारे में हर उस बात को नहीं कह सकते जिसकी हम कल्पना कर सकते हैं। समय हमें इसकी अनुमति नहीं देगा। हम केवल कुछ ही बातों को कहने को चुनने तक सीमित होते हैं। और हम अपने चारों ओर के लोगों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे उन अन्य बातों को याद रखें जो उन्हें उन थोड़ी सी बातों को समझने में सहायता करेंगी जिन्हें हम उन्हें किसी समय पर कहना चाहें।

इसी तरह की बात परमेश्वर पर भी लागू होती है जब वह पवित्रशास्त्र से हमसे बात करता है। और ऐसा इस कारण से नहीं है कि परमेश्वर बहुत सी बातों को स्पष्ट और तुरंत कहने में अयोग्य है। इसकी अपेक्षा, यह इस कारण से है कि हम सीमित प्राणी बहुत बातों को तुरंत और व्यापक रूप से समझने में अयोग्य हैं। क्योंकि परमेश्वर पवित्रशास्त्र को हमारी सीमितता के साथ जोड़ता है, इसलिए बाइबल का कोई भी अनुच्छेद उन सब बातों को नहीं कह सकता जो किसी एक विषय के लिए कहा जा सकता हो। अतः किसी एक विषय के बारे में हमें किन बातों पर विश्वास करना चाहिए, उसकी एक पूरी तस्वीर को पाने के लिए हमें बाइबल के एक या दो अनुच्छेदों पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए। वे किसी विषय के बारे में वह सब कुछ नहीं कह सकते जो हमें जानने की आवश्यकता है। इसकी अपेक्षा, हमें बाइबल के अनेक और विस्तृत अनुच्छेदों के बीच तार्किक संबंधों को जोड़ना है।

उदाहरण के लिए, कर अदा करने के बारे में एक निर्णय लेने के लिए हमें एक से अधिक सरल धर्मवैज्ञानिक तथ्यों पर विचार करना जरुरी है, जैसे कि, 1 कुरिन्थियों 10:31 से “सब कुछ परमेश्वर की महिमा के लिए करो।” हमें कई अनुच्छेदों का एक संयोजित मिलान करना जरुरी है। उदाहरण के लिए, हमें बात को भी देखना है कि 2 इतिहास 28:21 “प्रभु की चीजों और राजा की चीजों” के बीच भिन्नता को दिखाता है। हमें इस बात पर भी ध्यान देना है कि मत्ती 22:21 में मसीह ने इसी प्रकार से अन्यजाति के शासकों के बारे में भी बात की जब उसने अपने चेलों को यह बताया :

> “जो कैसर का है वह कैसर को, और जो परमेश्वर का है वह परमेश्वर को दो” (मत्ती 22:21)।

और निसंदेह, पौलुस ने रोमियों 13:6-7 में कहा है कि हमें अपनी सरकारों को कर अदा करना चाहिए क्योंकि वे परमेश्वर की ओर से ठहराए गए हैं। अब, इन धर्मवैज्ञानिक तर्क-वाक्यों को एक साथ रखने में सावधानी से किए जाने वाले बहुत से तार्किक तर्क-वितर्क की आवश्यकता होती है। परंतु तार्किक रूप से एक स्पष्ट धर्मशिक्षा की रचना करने के लिए इन अनुच्छेदों पर विचार करना हमारा उत्तरदायित्व है। और जब हम ऐसा करते हैं, तो हम देखते हैं कि हमें जो कुछ सरकारों का है वह उन्हें देना चाहिए।

पवित्रशास्त्र की बहुत सी बाइबल आधारित शिक्षाओं को तार्किक रूप से स्पष्ट धर्मशिक्षाओं में संकलित करने की योग्यता प्रत्येक मसीही के लिए एक महत्वपूर्ण दक्षता होनी चाहिए कि वे इसे प्राप्त करें। जब हम विवेचनात्मक और निगमनात्मक तर्क का सही प्रयोग करते हुए एक बड़े पैमाने पर बाइबल की शिक्षाओं को संकलित करने में सक्षम हो जाते हैं, तो हम मसीही जीवन में काफी उन्नति कर सकते हैं।

अब, हम जिस बात पर विश्वास करते हैं उसकी तार्किक रचना को सीखना जितना भी सकारात्मक हो, इसके साथ-साथ हमें इस बारे में भी जागरूक रहना चाहिए कि धर्मविज्ञान में तार्किक तर्क वितर्क की अपनी ही हानियाँ हैं जो वास्तव में हमारे मसीही जीवन में रूकावट बन सकती हैं।

रूकावट

अक्सर ऐसे मसीही जो तार्किक रूप से स्पष्ट धर्मवैज्ञानिक धर्मशिक्षाओं के महत्व को देखते हैं, इसी सोच के फंदे में फंस जाते हैं कि उन्हें धर्मशिक्षाओं के विषय में कार्य करते हुए केवल तार्किक रूप से ही सोचना है। वे मसीही जीवन के अन्य पहलुओं को अनदेखा कर देते हैं, और इस प्रकार धर्मवैज्ञानिक प्रक्रिया को मात्र विवेकपूर्ण, तार्किक चिंतन तक सीमित कर देते हैं। परंतु जब हम इस तरीके से सोचते हैं, तो हम स्वयं को अपने धर्मवैज्ञानिक चिंतन पर पड़ने वाले कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रभावों से अलग कर लेते हैं।

इस अध्याय में पहले हमने देखा था कि धर्मशिक्षा विवेचनात्मक तर्क पर निर्मित होती हैं जो प्रमाण और हमारे द्वारा निकाले गए निष्कर्ष के बीच एक विवेचनात्मक खाई को उस में छोड़ देता है। हमने इस

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

पर भी ध्यान दिया था कि इस विवेचनात्मक खाई को कई बातों से भरा जा सकता है जो हमारे सामान्य ज्ञान और बोधों से निकलती हैं, इनमें कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कारक भी शामिल होते हैं जो तार्किक चिंतन के विषय नहीं होते।

क्योंकि यह सत्य है, इसलिए हमें सदैव सावधान रहना चाहिए कि हम कठोर तार्किक विश्लेषण को अनुमति न दें कि वे अन्य भक्तिमय प्रभावों को बाहर कर दें। हमें पवित्र आत्मा के प्रति संवेदनशीलता के साथ भक्तिमय तरीके से पवित्रशास्त्र को पढने के लिए उत्साहित रहना चाहिए। हमें अन्य विश्वासियों के साथ परस्पर सहभागिता के लिए प्रेरित रहना चाहिए ताकि हम उनकी संगति से विश्वास की सामर्थ्य को प्राप्त करें। हमें मसीह के साथ चलने के प्रति प्रेरित रहना चाहिए ताकि हम उसके विधान और अपने विवेक में अगुवाई प्राप्त करें। जब हम इस तरह से पवित्र हो जाते हैं, तभी हम उस विश्वास को प्राप्त कर सकेंगे कि हम उन तरीकों से विवेवचनात्मक खाई को भर रहे हैं जो परमेश्वर को प्रसन्न करते हैं। धर्मवैज्ञानिक निष्कर्षों को पाने की प्रक्रिया को मात्र तार्किक परिश्रम तक सीमित कर देना हमें उन कई महत्वपूर्ण स्रोतों से अलग कर देगा जिन्हें परमेश्वर ने मसीही जीवन की संपूर्णता में प्रदान किया है।

इसकी समझ के अतिरिक्त कि धर्मशिक्षा कैसे मसीही जीवन में लाभों और हानियों को ला सकती हैं, हमें सदैव इसके प्रति भी जागरूक रहना चाहिए कि वे समुदाय में हमारी सहभागिता को कैसे प्रभावित करती हैं।

समुदाय में सहभागिता

समुदाय में सहभागिता हमारे जीवनों में मसीह की देह के महत्व पर ध्यान केंद्रित करने में हमारी सहायता करती है। इन अध्यायों में हमने मसीही समुदाय में सहभागिता के तीन महत्वपूर्ण आयामों पर बात की है : मसीही धरोहर (अतीत की कलीसिया में पवित्र आत्मा के कार्य की गवाही), वर्तमान मसीही समुदाय (हमारे आज के मसीही जीवन की गवाही), और हमारे व्यक्तिगत निर्णय (हमारे व्यक्तिगत निष्कर्षों और बोधों की गवाही)। समुदाय के ये आयाम असँख्य तरीकों से एक दूसरे के साथ सहभागिता करते हैं।

हम ऐसे कुछ ही विचारों का उल्लेख करेंगे जिनमें धर्मशिक्षा सामुदायिक सहभागिता के इन तत्वों में या तो वृद्धि कर सकते हैं या फिर रूकावट बन सकते हैं। आइए उस एक महत्वपूर्ण तरीके को देखें जिनमें धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श सामुदायिक सहभागिता में वृद्धि कर सकते हैं।

वृद्धि

मसीही जीवन पर धर्मवैज्ञानिक धर्मशिक्षाओं का शायद सबसे सकारात्मक प्रभाव वह तरीका है जिसमें वे कलीसिया में एकता या सदभाव ला सकती हैं। यदि कोई ऐसा तरीका है जिसमें हम एक दूसरे के साथ अपनी सहभागिता में वृद्धि कर सकते हैं, तो यह पवित्रशास्त्र की अनेक शिक्षाओं पर एक साथ तर्क वितर्क करने में सक्षम बनना है।

मेरा एक मित्र है जिसने सहायकों का एक समूह बनाया जो अपने सप्ताहांत गरीबों के लिए मकान बनाने में बिताते थे। यह एक बड़ी सेवकाई थी और उसने अपने प्रयासों के द्वारा कई लोगों को आशीषित किया था। मैंने एक बार उससे पूछा, “अपनी परियोजनाओं में कौन सी सबसे बड़ी समस्या का तुम सामना करते हो।” उसने शीघ्रता से उत्तर दिया, “नए लोग; यह हमारी सबसे बड़ी समस्या है। हमें उन्हें मूल बातों को समझाने के लिए सब कुछ रोक देना पड़ता है। नए लोग पूरे समूह के लिए कार्य पूरा करने में रुकावट बन सकते हैं।”

कई रूपों में मेरे मित्र का अनुभव मुझे मसीही समुदाय में धर्मवैज्ञानिक वार्तालाप या सहभागिता को याद दिलाता है। नए लोगों का मसीह में आना चाहे जितना भी अद्भुत हो, हमारे पास निर्माण का कार्य

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

रहता ही है। यह हमारे लिए सदैव महत्वपूर्ण होता है कि हम नए साथी मसीहियों को मसीही विश्वास की धर्मशिक्षाओं में प्रशिक्षित करें, ताकि हमें उन्हें यहाँ वहाँ इस या उस मूल शिक्षा के लिए रोकते रहने की आवश्यकता न पड़े।

आपको स्मरण होगा कि इब्रानियों के लेखक ने अपने पाठकों को विश्वास में दूध पीने से आगे न बढ़ने, अर्थात् मसीहियत की सरलतम शिक्षाओं से आगे न बढ़ने के कारण डांटा था। इब्रानियों 5:12 में उसने ये शब्द लिखे :

> समय के विचार से तो तुम्हें गुरू हो जाना चाहिए था, तौभी यह आवश्यक हो गया है कि कोई तुम्हें परमेश्वर के वचनों की आदि शिक्षा फिर से सिखाए। तुम तो ऐसे हो गए हो कि तुम्हें अन्न के बदले अब तक दूध ही चाहिए (इब्रानियों 5:12)।

मसीह में एक साथ उन्नति करने के लिए धर्मशिक्षाओं का ज्ञान ही सब कुछ नहीं है जिसकी हमें आवश्यकता है, बल्कि जब हम धर्मशिक्षा-संबंधी मान्यताओं को आपस में बांटते हैं तो हम परमेश्वर के राज्य का निर्माण और अधिक प्रभावशाली रूप से कर सकते हैं।

इसके साथ-साथ, जहाँ सच्ची धर्मशिक्षाओं का ज्ञान सहभागिता में वृद्धि कर सकता है, वहीं धर्मशिक्षाओं पर बहुत ज्यादा ध्यान देना वास्तव में मसीहियों के बीच सहभागिता में रूकावट भी बन सकता है।

रूकावट

इस बात पर विचार करें कि कलीसिया के विभिन्न संप्रदाय अपने सामुदायिक ध्यान को अलग-अलग बातों में पाने की प्रवृति रखते हैं। कलीसिया के कुछ संप्रदाय समुदाय के स्रोत के रूप में पारंपरिक सामूहिक आराधना पर ध्यान केंद्रित करते हैं। यह विशेषकर आराधना पद्धति वाली कलीसियाओं में पाया जाता है। अन्य एक दूसरे के साथ साझेपन को पाने के लिए नाटकीय रूप से होने वाले व्यक्तिगत धार्मिक अनुभव को ढूंढते हैं। ये कलीसियाएँ अक्सर उद्धाररहित लोगों के मन परिवर्तन या पवित्र आत्मा के असाधारण वरदानों पर ध्यान केंद्रित करती हैं। कलीसिया के और अन्य संप्रदाय समुदाय की खोज के लिए धर्मशिक्षा पर ध्यान केंद्रित करते हैं। वे अपनी एकता को प्राथमिक रूप से उन धर्मवैज्ञानिक विचारों के संदर्भों में देखते हैं जिनमें वे विश्वास करते हैं।

अब इनमें से प्रत्येक प्रवृत्ति के अपने लाभ हैं। परंतु प्रत्येक की अपनी कमजोरियाँ भी हैं। सच्चाई तो यह है कि कलीसियाएँ इस तरह की समस्याओं से बच सकती हैं यदि वे केवल उन बातों पर ही ध्यान केंद्रित करें जिन्हें अन्य कलीसियाएँ बहुत महत्वपूर्ण समझती हैं।

वे जो सामूहिक आराधना पर अधिक ध्यान केंद्रित करते हैं अक्सर उन्हें धर्मशिक्षा और व्यक्तिगत धार्मिक अनुभव पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है। वे जो धार्मिक अनुभवों पर अपने ध्यान को केंद्रित करने की प्रवृत्ति रखते हैं, वे सामान्य रूप से धर्मशिक्षा-संबंधी और सामूहिक आराधना के महत्व की अच्छाई का उपयोग कर सकते हैं। और निसंदेह, वे जो अपनी एकता को धर्मशिक्षा में पाते हैं, उन्हें आराधना और व्यक्तिगत धार्मिक अनुभव की दिशा में और अधिक समय बिताने की आवश्यकता है।

यह अंतिम समूह ही है जो धर्मवैज्ञानिक धर्मशिक्षाओं पर इस हद तक जोर देने के कारण अक्सर समस्या में पड़ जाता है कि वे वास्तव में समुदाय की परस्पर सहभागिता में रूकावट बन जाती हैं। हम सबने ऐसे मसीहियों के बारे में सुना है जो अपनी सैद्धांतिक शुद्धता में कट्टर, अपनी धर्मशिक्षाओं पर अड़े रहने वाले, अहंकारी और घमंडी होते हैं। वे इतना ज्यादा घमंडी होते हैं कि वे सैद्धांतिक शुद्धता के अतिरिक्त किसी बात को महत्व नहीं देते।

मैं सोचता हूँ कि हमें मसीह की देह के बारे में कुछ बातों को याद करने की आवश्यकता है। परमेश्वर ने हममें से प्रत्येक को विभिन्न स्वाभाविक वरदान और पवित्र आत्मा के विभिन्न वरदान दिए हैं। ये वरदान हममें से कुछ को विधिवत धर्मविज्ञान की तार्किक कड़ाई की ओर झुकाने की प्रवृति रखते हैं। और वे हममें से कुछ अन्यों को धर्मशिक्षा-संबंधी विषयों में कम रूचि रखने की ओर झुकाने की प्रवृत्ति रखते हैं। यह आवश्यक रूप से गलत या पापपूर्ण नहीं है कि एक व्यक्ति धर्मशिक्षाओं जैसी एक अच्छी बात में किसी दूसरे की अपेक्षा कम रुचि रखे। हमें यह समझने की आवश्यकता है कि धर्मशिक्षा के लिए हमारे उत्साह का स्तर अक्सर वरदान और बुलाहट का विषय है। और इससे परे, हमें यह स्मरण रखने की आवश्यकता है कि प्रत्येक मसीही विश्वासी को दूसरे मसीही विश्वासी की आवश्यकता है। जो धर्मशिक्षा-संबंधी विषयों की ओर अधिक झुकाव रखते हैं, उन्हें उनकी आवश्यकता है जो इस तरह का झुकाव नहीं रखते और ऐसा ही इसके विपरीत रूप में भी लागू होता है। हम एक दूसरे को संतुलित करते हैं; और एक दूसरे की सहायता करते हैं कि ऐसे रूपों में मसीह के लिए जीया जाए जिनमें हम अपनी योग्यता से नहीं जी सकते।

परंतु इस तरह की सामुदायिक सहभागिता और परस्पर निर्भरता में अक्सर उस समय रूकावट आ जाती है जब हम धर्मशिक्षा-संबंधी शुद्धता की कड़ाई पर आवश्यकता से ज्यादा बल देते हैं।

धर्मशिक्षाओं के साथ मसीह जीवन और समुदाय में सहभागिता के संबंध के कुछ रूपों को देखने के बाद, हमें तीसरे मुख्य धर्मवैज्ञानिक स्रोत की ओर मुड़ना चाहिए : पवित्रशास्त्र की व्याख्या। विधिवत प्रक्रियाओं में धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श किस प्रकार बाइबल की हमारी व्याख्या को प्रभावित करते हैं?

पवित्रशास्त्र की व्याख्या

व्याख्या मसीही धर्मविज्ञान के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यही पवित्रशास्त्र में परमेश्वर के विशेष प्रकाशन तक पहुँचने के लिए सबसे सीधा तरीका है। हमने एक अन्य अध्याय में सुझाव दिया है कि उन तीन तरीकों में सोचना काफी सहायक होगा जिनमें पवित्र आत्मा ने पवित्रशास्त्र की व्याख्या करने में कलीसिया की अगुवाई की है। हमने इन तीन विशाल श्रेणियों को साहित्यिक विश्लेषण, ऐतिहासिक विश्लेषण और विषयात्मक विश्लेषण कहा है। साहित्यिक विश्लेषण पवित्रशास्त्र को एक तस्वीर के रूप में देखता है, जैसे मानवीय लेखकों के द्वारा अपने विशिष्ट साहित्यिक गुणों के माध्यम से अपने मूल श्रोताओं को प्रभावित करने के लिए एक कलात्मक प्रस्तुति। ऐतिहासिक विश्लेषण पवित्रशास्त्र को इतिहास की एक खिड़की के रूप में देखता है, अर्थात् उन प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं को देखने और उनसे सीखने का तरीका जिन्हें पवित्रशास्त्र दर्शाता है। और विषयात्मक विश्लेषण पवित्रशास्त्र को एक दर्पण के रूप में देखता है, अर्थात् उन प्रश्नों और विषयों पर चिंतन करना जिनमें हमारी रूचि होती है।

व्याख्या की इस रूपरेखा को मन में रखते हुए, हमें उन तरीकों का अध्ययन करना चाहिए जिनमें धर्मशिक्षाएँ बाइबल की हमारी व्याख्या में या तो वृद्धि कर सकती हैं या फिर रूकावट उत्पन्न कर सकती हैं। आइए, सबसे पहले हम उस तरीके को देखें जिसमें धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श बाइबल की व्याख्या करने में हमारी सहायता कर सकते हैं।

वृद्धि

मैं अक्सर चकित रह जाता हूँ कि कितने मसीही यह मानते हैं कि मसीहियत की अधिकाँश मूल धर्मशिक्षाएँ स्पष्टता से बाइबल में सिखाई गई हैं। सच्चाई तो यह है कि हमारे विश्वास के बहुत से मूल सिद्धांतों को प्रत्यक्ष या विशेष रूप से बाइबल में संबोधित नहीं किया गया है।

मैंने एक बार एक जाने-पहचाने पासवान को अपनी कलीसिया में यह कहते हुए सुना था, “हमें केवल उन्हीं बातों पर विश्वास करना चाहिए जिन्हें बाइबल स्पष्ट और खुले रूप में सिखाती है, न कि उन निहितार्थों को जिन्हें हम सोचते हैं कि इसमें हैं।” मेरे अनुभव में, मसीहियों के लिए यह दावा करना आम है कि हमें बाइबल की अस्पष्ट शिक्षाओं की अपेक्षा स्पष्ट शिक्षाओं को अधिक प्राथमिकता देनी चाहिए।

परंतु सम्प्रेषण का एक सिद्धांत है जिसे हम सबको स्मरण रखने की आवश्यकता है: अक्सर, लोग जिस सबसे मूलभूत बात पर विश्वास करते हैं उसे कभी प्रत्यक्ष रूप से नहीं कहते। इसकी अपेक्षा, उनका अनुमान लगाया जाता है। दूसरे शब्दों में, जब भी किसी से हमारी बातचीत होती है, या जब भी हम कोई पत्र या पुस्तक लिखते हैं, तो हम सामान्यतः हमारी सबसे मूलभूत, साझी धारणाओं को स्पष्ट रूप से नहीं कहते।

एक पल के लिए इस सिद्धांत के बारे में सोचें। मैंने एक बार भी इस पूरी श्रृंखला में यह नहीं कहा कि मैं परमेश्वर के अस्तित्व में विश्वास करता हूँ। क्यों नहीं कहा? क्योंकि यह मान्यता हमारे अध्यायों के लिए इतनी ज्यादा मूलभूत है कि हम सब यह अनुमान लगा लेते हैं कि मैं परमेश्वर में विश्वास करता हूँ। मैंने इस अध्याय में कहीं भी यह तर्क नहीं दिया है कि बाइबल परमेश्वर का वचन है। क्यों नहीं दिया? क्योंकि हमारे बीच यह मान लिया गया है। ये और कई अन्य सत्य; वे जो कुछ मैंने स्पष्ट कहा है उसके लिए अस्पष्ट आधार का निर्माण करते हैं।

बहुत रूपों में पवित्रशास्त्र के साथ भी यही लागू होता है। पवित्रशास्त्र के लेखक उन सबसे अधिक व्यवस्थित बातों पर स्पष्ट रूप से ध्यान केंद्रित नहीं करते जो वे कह रहे होते हैं। वे सत्य उसके नीचे होते हैं जो वे स्पष्ट रूप से कहते हैं। और विधिवत धर्मविज्ञान का एक लक्ष्य उन धर्मवैज्ञानिक अनुमानों की खोज करना है जो उन बातों को दर्शाते हैं जिन्हें हम पवित्रशास्त्र में पाते हैं। उदाहरण के लिए, बाइबल में हम कहीं भी त्रिएकता की स्पष्ट शिक्षा को नहीं पाते और न ही यह पाते हैं कि मसीह के दो स्वभाव उसके एक व्यक्तित्व में कैसे परस्पर संबंध रखते हैं। ये दोनों धर्मशिक्षाएँ ऐतिहासिक मसीहियत के प्रमाण चिह्न हैं। मसीहियत की ये और अन्य महत्वपूर्ण शिक्षाएँ अधिकाँश रूप में उन शिक्षाओं के तार्किक निहितार्थों पर आधारित होती हैं जो पूरी बाइबल में फैले हुए हैं। जब विधिवत धर्मविज्ञानी त्रिएकता और मसीह के स्वभावों जैसी धर्मशिक्षाओं को विकसित करते हैं, तो वे बाइबल में कुछ जोड़ नहीं रहे होते, बल्कि वे उसे स्पष्ट रूप से कहने का प्रयास करते हैं जो कि बाइबल के धरातल के नीचे पहले से रखा हुआ है।

इसी कारणवश, पवित्रशास्त्र की हमारी व्याख्या उस बुद्धिमानी से काफी उन्नत हो सकती है जिसे कलीसिया ने पवित्रशास्त्र के निहितार्थ को समझने के लिए कठोर तार्किक चिंतन का उपयोग करके सदियों से विकसित किया है। पवित्रशास्त्र जो शिक्षा देता है उसमें से अधिकाँश को वे कभी स्पष्ट रूप से नहीं कहते। और विधिवत धर्मविज्ञान इन अस्पष्ट शिक्षाओं को प्रकट करने का सबसे बड़ा सहायक साधन है।

पवित्रशास्त्र की व्याख्या में धर्मशिक्षाएँ चाहे कितनी भी महत्वपूर्ण क्यों न हों, हमें उस महत्वपूर्ण तरीके के बारे में भी जागरूक रहना चाहिए जिसमें वे वास्तव में पवित्रशास्त्र की व्याख्या में रूकावट बन सकती हैं।

रूकावट

सारांश में, विधिवत धर्मविज्ञान में धर्मशिक्षाओं का सबसे बड़ा खतरा अनुमान लगाना है। जैसा कि हमने बहुत बार ध्यान दिया है, आधुनिक विधिवत धर्मविज्ञान मध्यकालीन विद्वतावाद पर बहुत अधिक आधारित है। परंतु मध्यकालीन विद्वतावाद की एक मुख्य विशेषता यह अनुमान लगाना थी कि तार्किक विश्लेषण कलीसिया को ऐसे सत्यों की ओर ले जा सकता है जो कि पवित्रशास्त्र की शिक्षाओं से

बहुत आगे चले जाते हैं। हममें से बहुतों ने एक ऐसे काल्पनिक प्रश्न को सुना है जो मध्यकालीन धर्मवैज्ञानिकों में मन में बना रहता था, “एक पिन के सिर पर कितने स्वर्गदूत नाच सकते हैं।”

अब क्योंकि प्रोटेस्टेंट विधिवत धर्मविज्ञान विद्वतावादी धर्मविज्ञान पर बहुत अधिक आधारित है, इसलिए यह भी कई बार अनुमानों में भटक जाता है। यह विचारों की खोज भी करता है और ऐसे निष्कर्षों तक पहुँच जाता है जिनके लिए बाइबल में से समर्थन या तो बहुत कम है या फिर है ही नहीं क्योंकि ये निष्कर्ष तार्किक प्रतीत होते हैं।

उदाहरण के लिए, आप यह जानकर चकित हो जाएँगे कि पारंपरिक प्रोटेस्टेंट विधिवत धर्मविज्ञान में एक अनुमानित विषय “पतन की अवस्था के प्रश्न (लैपसेरियन प्रश्न)” पर बड़े-बड़े वाद-विवाद हुए हैं। शायद आपने सुप्रालैपसेरियनिज्म, इन्फ्रालैपसेरियनिज्म और सबलैपसेरियनिज्म या इसके कुछ और रूपों को सुना होगा। इन विचारधाराओं की वकालत करने वालों के बीच बड़े-बड़े वाद-विवाद हुए हैं। और पूरा वाद-विवाद इस प्रश्न पर आधारित होता है : "किस तार्किक क्रम में हमें परमेश्वर की अनंत आज्ञाओं को प्राप्त करना चाहिए?” ठीक सुना आपने। परमेश्वर की अनंत आज्ञाओं का तार्किक क्रम — ब्रह्मांड के लिए उसकी अनंत योजना।

अब मैं आशा करता हूँ कि सब यह जानते हैं कि बाइबल इस विषय को संबोधित करने के आस-पास भी नहीं आती। यह उन रहस्यों में से एक है जिसके विषय में बाइबल हमें कोई जानकारी प्रदान नहीं करती। परंतु धर्मशिक्षा-संबंधी विचार-विमर्शों में तार्किक विश्लेषण पर आवश्यकता से अधिक बल देना इस या ऐसे कई अन्य अनुमानों की ओर अगुवाई कर सकता है।

जब हम सीखते हैं कि पवित्रशास्त्र से धर्मशिक्षाओं को विकसित करने के लिए तार्किक चिंतन को कैसे लागू किया जाए, तो हम इतने बुद्धिमान तो होंगे कि व्यवस्थाविवरण 29:29 में पाए जाने वाले मूसा के जाने-पहचाने शब्दों को याद करें :

> गुप्त बातें हमारे परमेश्वर यहोवा के वश में हैं; परंतु जो प्रकट की गई हैं वे सदा के लिए हमारे और हमारे वंश के वश में रहेंगी, इसलिए कि इस व्यवस्था की सब बातें पूरी की जाएँ (व्यवस्थाविवरण 29:29)।

ऐसी गुप्त बातें, रहस्य हैं जिन्हें हम पर प्रकट नहीं किया गया है। इसलिए, सावधानीपूर्वक किया हुआ तार्किक चिंतन अक्सर हमें अनुमानों की ओर ले चलता है। जब हम धर्मशिक्षा-संबंधी प्रक्रिया में पवित्रशास्त्र की व्याख्या करते हैं तो हमें सदैव स्वयं को स्मरण दिलाना चाहिए कि हम उससे बहुत दूर न चले जाएँ जो पवित्रशास्त्र वास्तव में सिखाता है। प्रत्येक कदम पर हमें स्वयं से निरंतर यह पूछते रहना चाहिए कि बाइबल का कौनसा प्रमाण इस धर्मशिक्षा का समर्थन करता है। पवित्रशास्त्र के समर्थन के स्थान पर नियमित रूप से तार्किक अनुमानों को रखना निसंदेह पवित्रशास्त्र की हमारी व्याख्या को बाधित करेगा।

उपसंहार

इस अध्याय में हमने विधिवत धर्मविज्ञान में धर्मशिक्षाओं पर खोज की है। हमने यह देखा है कि वे क्या हैं और विधिवत धर्मविज्ञान में कैसे उपयुक्त बैठती हैं। हमने यह भी खोज की है कि धर्मशिक्षाओं की रचना कैसे होती है और हमने उनके द्वारा प्रस्तुत कुछ मूल्यों और खतरों को भी देखा है।

सभी मसीहियों के पास धर्मशिक्षाएँ हैं जिनमें वे विश्वास करते हैं। भले ही वह लिखित रूप में हों या फिर मौखिक रूप से ही सिखाई गई हों। परंतु यह सीखना कि कैसे विधिवत धर्मविज्ञानियों ने सदियों से

मसीही धर्मशिक्षाओं की रचना की है, एक सबसे उत्तम तरीका है कि हम इस बात को जाँचें कि हम पहले से क्या विश्वास करते हैं और जब हम उसकी सेवा करते हैं और उसके लोगों की सेवा करते हैं तो परमेश्वर के वचन के विषय में अपने ज्ञान को बढ़ाएँ।